ग्रामीण पाठकों के लिए

हमारे त्योहार

खालिद अशरफ़

अनुवाद
इज़हार अहमद नदीम

चित्रांकन
दीपक मैत्रा

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

विषय सूची

स्वतंत्रता दिवस

हमारा देश 15 अगस्त 1947 को अंग्रेजों की गुलामी से स्वतंत्र हुआ था। अंग्रेज भारतीयों पर तरह-तरह के अत्याचार करते थे। इस के अतिरिक्त भारत की दौलत का बड़ा भाग देश के बाहर चला जाता था, या अंग्रेज अफसरों और फौजियों पर खर्च हो जाता था। गुलामी और अन्याय के कारण हमारी जनता गरीब हो गई थी। अच्छी शिक्षा न मिलने के कारण भारत में निरक्षरता आम थी। स्वास्थ्य की मुनासिब देखभाल न होने के कारण पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की बड़ी संख्या कम आयु में मौत का शिकार हो जाती थी। जमींदारों के जुल्मों और शासन के नाजायज करों से किसान परेशान रहते थे। अधिकतर किसान महाजनों से कर्ज लने पर मजबूर होते थे, जो पैसे वापस न मिलने पर उनकी जमीनों पर कब्जा कर लेते थे।

इन परिस्थितियों के विरोध में आवाज उठाने के लिए गांधीजी के नेतृत्व में स्वतंत्रता आंदोलन की शुरुआत हुई जिसमें जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचंद्र बोस, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, मौलाना आज़ाद, सरदार बल्लभभाई पटेल, खान अब्दुल ग़फ्फार खां, राजा महेन्द्र प्रताप, मौलाना अब्दुल्लाह सिंधी, एनी बेसेंट, गोपाल कृष्ण गोखले, सी.आर. दास, भगत सिंह, मौलाना हसरत मोहानी, उधम सिंह सरोजनी नायडू, रास बिहारी बोस, मोहम्मद अली, अशफाकुल्लाह खां, डा. अंसारी और लाला हरदयाल इत्यादि ने भाग

लिया और अपना चैन आराम त्याग कर भारत को आज़ाद कराया।

हर वर्ष 15 अगस्त को पूरे देश में स्वतंत्रता का उत्सव धूमधाम से मनाया जाता है। सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम दिल्ली के लाल किले पर होता है। सवेरे के समय देश के प्रधानमंत्री तिरंगा झंडा फहराते हैं और राष्ट्र के नाम संदेश देते हैं। प्रधानमंत्री का भाषण रेडियो और टेलीविज़न द्वारा पूरे देश में प्रसारित किया जाता है। इस अवसर पर तीनों सेनाओं के प्रमुख, प्रधानमंत्री को सलामी देते हैं। राष्ट्रध्वज के सम्मान में इक्कीस तोपों की सलामी दी जाती है। इस उत्सव में देश के बहुत से गण्यमान्य व्यक्ति, विदेशों के राजदूत, मंत्री, सरकारी अधिकारी और स्कूल के छात्र शामिल होते हैं। भाषण के अंत में प्रधानमंत्री तीन बार "जयहिंद" कहते हैं। कार्यक्रम के समापन पर राष्ट्रगान गाया जाता है। देश के सभी राज्यों की राजधानियों में भी स्वतंत्रता दिवस इसी प्रकार मनाया जाता है, जहां मुख्यमंत्री तिरंगा फहराते हैं और जनता के नाम संदेश देते हैं। इस अवसर पर स्कूलों और कालेजों में भी झंडा फहराया जाता है और उत्सव मनाए जाते हैं। बच्चों को मिठाई बाँटी जाती है और देश की आजादी की सुरक्षा करने की शपथ ली जाती है। सभी मिल कर जनगणमन गाते हैं।

स्वतंत्रता दिवस हमारा राष्ट्रीय पर्व है। इसे सभी धर्मों के मानने वाले मिल-जुल कर मनाते हैं। आजादी सभी को प्यारी है। क्योंकि आजादी से देश खुशहाल होता है और भारतीयों को सम्मान प्राप्त होता है।

गणतंत्र-दिवस

अब से पचास वर्ष पहले हमारा देश ब्रिटेन का गुलाम था। अंग्रेजों ने भारत में ऐसे कानून लागू किए थे जिन में सब को बराबरी का दर्जा हासिल नहीं था। ऊंचे पदों पर केवल अंग्रेजों को रखा जाता था और छोटी नौकरियां सिर्फ उन भारतीयों को दी जाती थीं जो अंग्रेज शासन का पक्षपात करते थे। इस तरह भारतीयों का एक ऐसा वर्ग अस्तित्व में आ गया था जो जुल्म और नाबराबरी को प्रचलित रखने के लिए जनता के साथ मनमाना और सौतेला बर्ताव करता था।

1947 में देश तो स्वतंत्र हो गया था परंतु भारत में सब को बराबरी का स्थान देने वाले कानून नहीं थे। नए कानून बनाने का काम बहुत बड़ा था। देश को न्यायपूर्ण संविधान देने के लिए हमारे नेताओं ने एक असैम्बली बनाई, जिसने कई वर्ष की मेहनत के बाद गणतंत्र, न्याय और सभी के लिए बराबरी के सिद्धांतों पर आधारित "भारत का संविधान" तैयार किया। इस संविधान की तैयारी में डा. भीमराव अंबेडकर ने सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

भारत का नया संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया। 1930 में इसी तिथि को संपूर्ण स्वतंत्रता की पहली बार मांग की गई थी। संविधान लागू होने के बाद डा. राजेन्द्र प्रसाद देश के पहले राष्ट्रपति बने। पहला आम चुनाव 1951 में हुआ जिस में सभी

भारतीयों को वोट डालने का अवसर दिया गया। इस तरह भारत गणतंत्र बना।

यूं तो गणतंत्र दिवस देश के कोने-कोने में मनाया जाता है लेकिन हमारे देश की राजधानी दिल्ली में यह उत्सव विशेष शान-व-शौकत के साथ मनाया जाता है। कार्यक्रम की पूर्व संध्या पर राष्ट्रपति रेडियो और टेलिविज़न पर राष्ट्र के नाम संदेश देते हैं। 26 जनवरी के दिन पहले प्रधानमंत्री इंडिया गेट जा कर शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। इस के बाद राष्ट्रपति जी की सवारी विजय चौक पर आती है, जो राष्ट्रपति भवन और संसद के पास ही है। यहां राष्ट्रपति राष्ट्रीय-ध्वज फहराते हैं, जिस के बाद फौजी परेड शुरू होती है। तीनों फौजों के दस्ते राष्ट्रपति को सलामी देते हुए गुजरते हैं। टैंक, तोपें, बख्तरबंद गाड़ियां, घुड़सवार और ऊंटसवार फौजी आते हैं। हवाई जहाज हैरतअंगेज़ करतब दिखाते हैं। हेलीकॉप्टर विजय चौक पर फूल बरसाते हैं। स्कूलों के बच्चे कसरत के नमूने दिखाते हैं। अलग-अलग राज्य के नर्तक अपने क्षेत्र के नृत्यों का प्रर्दशन करते हैं। गाड़ियों पर हर राज्य के जीवन को जाहिर करने वाली झांकियां निकलती हैं। परेड और झांकियां नगर की सड़कों से गुजर कर लाल क़िले पर समाप्त होती हैं। रास्ते में लाखों लोग इस प्रदर्शन को देखते हैं।

शाम को राष्ट्रपति भवन और आसपास के सरकारी भवनों पर सुंदर रोशनियां की जाती हैं। तीन दिन बाद फौज की टुकड़ियों की वापसी पर भव्य उत्सव होता है, जिस में शामिल होने के लिए देश और विदेश के अतिथि आते हैं।

राज्यों में पुलिस के दस्ते गर्वनर (उपराज्यपाल) को सलामी देते हैं। यहां गणतंत्र दिवस के उत्सव में मुख्यमंत्री, राज्य के मंत्री और

अधिकारी शामिल होते हैं। सरकारी भवनों पर रोशनियां की जाती हैं। स्कूलों और कालेजों में विशेष कार्यक्रम किए जाते हैं। गणतंत्र दिवस हमें याद दिलाता है कि सभी भारतीय बराबर हैं और भारत के कानून सब के लिए एक है।

गांधी-जयंती

राष्ट्रपिता मोहनदास करमचन्द गांधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 को गुजरात काठवाड़ के नगर पोरबंदर में हुआ था। वह दुनिया के उन चंद गिने-चुने व्यक्तियों में से थे जिन्होंने अत्याचार और गुलामी का विरोध खाली हाथों से जिहाद करने के लिए अहिंसा का ज्ञान दुनिया को सिखाया। वह एक धार्मिक परिवार में पैदा हुए। तेरह वर्ष की आयु में उनकी शादी कस्तूरबा से हो गई थी। 1888 में गांधी जी क़ानून की शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैंड गए। देश में वापस आकर उन्होंने वकालत शुरू की परंतु उसमें अधिक सफल न हो सके।

1893 में गांधी जी को एक व्यापारी का मुक़दमा लड़ने के लिए दक्षिणी अफ्रीका जाना पड़ा। मुक़दमे में वह सफल हुए। वहां पर गांधी जी ने गोरे अंग्रेजों के हाथों भारतीयों पर होने वाले जुल्म को देख कर उनकी रंगभेद की नीति के खिलाफ आंदोलन छेड़ने का फैसला किया। 1906 में "ट्रास्वाल काला कानून" पास हुआ। इस कानून का विरोध करने के लिए उन्होंने "सत्याग्रह" का रास्ता अपनाया, जिसमें दक्षिणी अफ्रीका में रहने वाले भारतीय भी साथ होते। गांधी जी को सफलता मिली और भारतीयों पर होने वाले जुल्म बंद हुए।

1915 में देश वापस आकर गांधी जी स्वतंत्रता के संघर्ष में शामिल हो गए। इस समय तक कांग्रेस में अधिकतर किसान, मजदूर

थे और यह अंग्रेजों से केवल छोटी रियायतें मांगते थे। गांधीजी ने भारत में गांव के महत्व को समझा और 1917 में चंपारण से किसान सुधार संघर्ष का काम आरंभ किया।

1920 में उन्होंने अंग्रेजी शासन के खिलाफ असहयोग आंदोलन शुरू किया। फिर उन्होंने 1930 में सवज्ञा आंदोलन चलाया जिसके द्वारा अंग्रेजों के बनाए हुए कानून पर चलना बंद किया गया। इसी समय गांधी जी ने विदेशी वस्तुओं के खिलाफ "स्वदेशी" का नारा दिया, जिस के पक्ष में भारतीयों ने लाखों रुपयों का विदेशी सामान फूंक कर, सरकारी पद छोड़कर और सरकारी शिक्षा संस्थाओं का बायकाट करके इस आंदोलन को मजबूत किया। इसी वर्ष लाहौर में स्वराज अर्थात संपूर्ण स्वतंत्रता की माँग शुरू की गई। 1942 में भारत में अंग्रेजों के खिलाफ "भारत छोड़ो" आंदोलन आरंभ हुआ, जिसमें गांधी जी के साथ सारे बड़े-बड़े नेता क़ैद कर लिए गए। लाखों की संख्या में आम लोगों ने जेलें भरीं जिसके कारण विदेशी शासन समझ गया कि अब भारत को स्वतंत्र करना ही पड़ेगा।

1947 में देश आजाद हुआ परंतु गांधी जी की इच्छा के विरुद्ध पाकिस्तान बना। हिंदू-मुस्लिम झगड़े हुए जिन्हें गांधीजी ने रूकवाने का भरपूर प्रयास किया। 30 जनवरी 1950 को नाथूराम गोडसे नाम के एक जुनूनी ने उन्हें शहीद कर दिया।

भारत में गांधी जी का जन्म दिवस हर वर्ष 2 अक्टूबर को राष्ट्रीय त्योहार के रूप में मनाया जाता है। इस दिन गांधी जी की समाधि पर, जो दिल्ली में यमुना के किनारे राजघाट पर स्थित है; देश के सभी बड़े नेता, मंत्री और जनता फूल चढ़ाते हैं और भजन गाते हैं। गांधी जयंती के दिन सभी धर्मों के मानने वाले प्रार्थना करते

हैं। इस दिन जनता की भलाई के लिए बहुत से सरकारी कार्यक्रम आयोजित होते हैं।

गांधी जी ने ग़रीब और सीधे-सादे भारतीय जनता के घरों और झोंपड़ियों में जाकर उन के दिलों को जीता। वह समाज के निचले वर्ग से बहुत प्रेम रखते थे और उन को "हरिजन" कहते थे। गांधी जी ने छुआ-छूत के खात्मे के लिए बहुत काम किया। इसी कारण आज भारत में कमजोर वर्गों को ऊपर उठाने के उपाय किए जा रहे हैं। और छुआ-छूत की प्रथा लगभग समाप्त कर दी गयी है।

गांधी जी एक धार्मिक व्यक्ति थे। लेकिन वह धर्म के नाम पर शासन प्राप्त करने और देश को बांटने के विरोधी थे। वह भगवत गीता के साथ-साथ कुरआन शरीफ और बाइबिल का भी अध्ययन करते थे। वह ग़रीबों की तरह रहते थे और जो सोचते थे, उस पर चलते थे। वह कई बार हिन्दू-मुस्लिम दंगा रोकने के लिए अपनी जान भी खतरे में डाल चुके थे।

गांधी जी, गांव को असली भारत समझते थे और सादगी, प्रेम का संदेश गांव में पहुंचाते थे। गांधी जयंती उन के महान आदर्शों पर चलने और मानवता को बढ़ावा देने का संदेश लेकर आती है।

रामनवमी

दुनिया में करोड़ों लोग आते हैं, चले जाते हैं। उन में अधिकतर को कोई नहीं जान पाता। कुछ ही ऐसे होते हैं जिनको दुनिया जानती है। इनसे भी कम वो होते हैं जिन्हें दुनिया याद करती है और ऐसे तो बहुत ही कम होते हैं, जिनको दुनिया न केवल सप्रेम और सम्मान के साथ याद करती है बल्कि उनकी पूजा भी करती है। भगवान रामचंद्र जी का ऐसा ही ऐतिहासिक व्यक्तित्व है।

भगवान रामचंद्र, जिन्हें इल्लामा इकबाल ने "इमाम-ए-हिन्द" यानी भारत को राह दिखाने वाला, की उपाधि दी थी, सारे भारत में श्रद्धा की नजर से देखे जाते हैं। महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास ने इनके जीवन के बारे में रामायण लिखा, जिनको रामलीला में हर साल मंच पर दिखाया जाता है। राम की नगरी अयोध्या में रामनवमी के अवसर पर मेला लगता है, जिसमें लाखों रामभक्त भाग लेते हैं। श्रद्धालु इस दिन व्रत रखकर पवित्र सरयू नदी में स्नान करके, भजन गाकर और रामकथा सुनकर दिन बिताते हैं। रामायण का पाठ घरों में भी किया जाता है।

भगवान राम अयोध्या के राजा थे और राजा दशरथ, रानी कौशल्या के बड़े पुत्र थे। उन का जन्म दिन चैत महीने की 9 तारीख को मार्च-अप्रैल के महीने में आता है, जिसे रामनवमी कहते हैं।

रामनवमी के दिन जो भक्त अयोध्या नहीं जा पाते वह अपने गांव और शहरों में रामकथा सुनते हैं और मंदिरों में रामचंद्र जी

की झांकियां देखते हैं, जहां बड़ी भीड़ होती है। कुछ जगहों पर इस दिन राम, सीता, लक्ष्मण और हनुमान की मूर्तियों की रथयात्रा निकाली जाती है। अयोध्या में "कनक भवन" में रामजी के दर्शन के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं। पांडिचेरी के श्री वरदा राजा पीरोमल मंदिर में बीस दिन तक रामनवमी मनाई जाती है।

रामचंद्र ने हिमालय से श्रीलंका तक लोकप्रिय शासन स्थापित किया था, जिस में कोई ऊंच-नीच नहीं थी, जहां कोई भूखा नहीं रहता था, हर किसी को न्याय मिलता और अत्याचारियों को पनपने नहीं दिया जाता था। इसी महान व्यक्ति को याद करते हुए गांधी जी ने अंतिम समय "हे राम" कहा था। वह एक मिसाली पुत्र, वफादार भाई, कर्तव्यपालक पति और कोमल हृदय वाले राजा थे। इसलिए लोग मिलने पर एक-दूसरे को राम-राम कहते हैं। उन्होंने जालिम राजा रावण से युद्ध किया था और हनुमान की सहायता से रावण को खत्म कर के सीता की रक्षा की थी।

रामचंद्र की पूजा करने का असल में लाभ तभी है, जब हम उनके बताए हुए आदर्शों पर चल कर दुनिया में दुबारा रामराज लाने का प्रयास करें।

जन्माष्टमी

पुराणों में लिखा है कि मथुरा में एक जालिम राजा कंस शासन करता था। उसको नारद मुनि ने बताया था कि उसकी बहन देवकी का एक बेटा उस का सर्वनाश करेगा। अपनी जान और शासन बचाने के लिए निर्दयी कंस ने अपनी बहन और बहनोई वासुदेव को क़ैद में डाल दिया, ताकि बच्चों के पैदा होते ही उन को खत्म क़र दे। उनके सात बच्चों को कंस ने मरवा दिया।

परंतु देवता, निर्दयी कंस को पसंद नहीं करते थे। भगवान ने कृष्ण जी के रूप में जन्म लेकर कंस का खात्मा करने की ठानी, ताकि दुनिया को दुखों से छुटकारा मिल सके।

भादों महीने की चौदहवीं रात को कृष्ण जी कैदखाने में पैदा हुए। कहते हैं कि उनके तेज से जेलखाने में प्रकाश फैल गया था। कृष्ण जी बहुत सुंदर थे। हालांकि उन का रंग सांवला था लेकिन उन की आंखें कमल के फूल जैसी थीं। उन का जन्म दिवस "जन्माष्टमी" भादों अर्थात अगस्त-सितंबर के महीने में आता है।

जिस रात भगवान कृष्ण पैदा हुए, उसी रात को गोकुल में नंद की पत्नी यशोदा ने एक बच्ची को जन्म दिया, जिस का नाम योगमाया रखा गया। बच्चे कृष्ण ने वासुदेव से कहा कि उन को गोकुल ले चलें और योगमाया को उसी समय ऐसा चमत्कार हुआ कि वासुदेव की जंजीर और कैद खाने के दरवाजे स्वयं खुल गए। पहरेदारों को दिखाई देना बंद हो गया। वासुदेव बच्चे को लेकर एक

टोकरी में छिपाकर चले, राजा इन्द्र ने इनको लोगों की नजरों से बचाने के लिए मूसलाधार वर्षा शुरू करा दी। नन्हें कृष्ण जी को भीगने से बचाने के लिए शेषनाग ने उन पर अपने फण का साया कर दिया। यमुना में पानी बहुत था परंतु पानी रास्ता देता चला गया। गोकुल पहुंच कर वासुदेव ने नन्हें कृष्णजी को यशोदा के बिस्तर पर सुला दिया और योगमाया को उठा कर क़ैद खाने में ले आए। कंस ने उस मासूम बच्ची को मरवाने की कोशिश की किंतु वह आकाश में उड़ गई। यशोदा और नंद ने कृष्ण जी का अपनी संतान की तरह पालन पोषण किया। कृष्ण जी बचपन में घी-दूध के शौक़ीन थे और अधिकतर मक्खन चुरा कर खा जाते थे। मक्खन चुराते और बांसुरी ऐसी बजाते थे कि सुनने वाले मुग्ध हो जाते थे।

चूंकि कृष्ण जी का जन्म आधी रात को हुआ था, इसलिए जन्माष्टमी वाले दिन पूजा, भजन इत्यादि आधी रात तक चलता रहता है। मंदिरों में कृष्ण जन्म से संबंधित झांकियां दिखाई जाती हैं। मथुरा और वृंदावन के मंदिरों की सजावट तो देखने योग्य होती है। लोग सज संवर कर राधा और कृष्ण के दर्शन करने जाते हैं। दिल्ली के बिरला मंदिर में तो इस दिन भक्तों की खूब भीड़ होती है।

कृष्ण जी ने कंस और शिशुपाल जैसे अत्याचारी राजाओं को खत्म किया था। महाभारत की लड़ाई से पहले अर्जुन को अपना कर्तव्य पूरा करने का उपदेश कृष्ण जी ने दिया था, वह भगवत गीता के नाम से जाना जाता है। उन्होंने अपने ग़रीब मित्र सुदामा से मित्रता निभाई थी। कृष्ण ने गीता में कहा कि मनुष्य को बिना फल का लालच किए अपना काम करते रहना चाहिए। निष्काम कार्य करने से मनुष्य की सारी कठिनाइयां दूर हो जाती हैं।

शिवरात्रि

भगवान शिव को संसार का नाश करने वाला कहा गया है। पवित्र ग्रंथों में लिखा है कि शिवरात्रि के दिन भगवान जीवित लिंग के रूप में प्रकट होते हैं और श्रद्धालुओं पर दया करते हैं। शिवरात्रि का त्योहार फागुन अर्थात् फरवरी-मार्च में आता है। लोग इस अवसर पर सारी रात उपवास रखते हैं, शिवलिंग की पूजा करते हैं, जप और ध्यान करते हैं। लोगों के दिलों में दया का भाव पैदा होने के लिए यह उपवास रखा जाता है। पुराने जमाने के भारत में शिव और विष्णु के मानने वालों के बीच बड़े झगड़े होते थे परंतु आज इस प्रकार की कोई बुराई हमारे समाज में नहीं पाई जाती।

पुराणों में लिखा है कि एक वन में एक तालाब के किनारे फूलों की एक लता के नीचे भगवान शिव की मूर्ति विराजमान थी। वहां हिरण पानी पीने आते थे। एक दिन एक बाघ वहां आ निकला और हिरणों के शिकार के लिए छिप कर बैठ गया। परंतु हिरणों के बच्चों से प्यार और हिरणियों के प्रतीक्षा करने की फरियाद सुन कर बाघ के दिल में नरमी पैदा हो गई और उसने शिकार करने का इरादा छोड़ दिया, हालांकि वह स्वयं भूखा था और उसके बच्चे भी भूख से तड़प रहे थे। उसी समय शंकर भगवान प्रकट हुए। उन्होंने उसे भूख पर विजय पाने का आशीर्वाद दिया और सजीवों की सेवा करने की शिक्षा दी। तभी से इस दिन शिव का उपवास रखा जाता है।

इस दिन लोग मंदिरों में पूजा करते हैं और उपवास समाप्ति

पर एक दूसरे को निमंत्रण देते हैं। बनारस में भगवान विष्णुनाथ के मंदिर में शिव लिंग रखे हुए हैं। महाशिवरात्रि के दिन भारत में सबसे अधिक शिवभक्त यहां आते हैं और शिवलिंग को दूध और बेल पत्र से धोते हैं। उज्जैन के महाकाल मंदिर में श्रद्धालु शिवलिंग की पूजा और स्नान करते हैं। इसके अतिरिक्त खजुराहो, वैशाली, तंजूर, वैद्यनाथ, मलकार, उज्जैन मंदिरों में भी लोग भारत के कोने-कोने से शिव लिंग की पूजा करते हैं।

कहा जाता है कि शिवजी, जिनको जहर पी लेने के कारण "नीलकंठ महादेव" भी कहा जाता है, इस रात को सृष्टि और तबाही का आकाशीय-नृत्य करते हैं, श्रद्धालु उनको प्रसन्न करने के लिए निर्जल उपवास रखते हैं और शिवालयों में पूजा करते हैं।

दुर्गा-पूजा

पुराणों में लिखा है कि एक बार एक भयानक राक्षस ने भैंसे का रूप धारण करके देवताओं को सताना शुरू कर दिया। सौ साल तक देवताओं और राक्षसों के बीच युद्ध चलता रहा। युद्ध में राक्षसों ने विजय प्राप्त करके देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया और स्वयं अंदर की गद्दी हथिया ली। इस अत्याचार के विरोध में फरियाद करने के लिए सारे देवता ब्रह्मा को साथ लेकर शिवजी और विष्णु के पास पहुंचे। जब दोनों भगवानों ने राक्षसों के पाप की कहानी सुनी तो गुस्से में आ गए। उनके शरीर से तेज प्रकाश फूट पड़ा, जिससे दुर्गा का जन्म हुआ। भगवान ने दुर्गा को हर अत्याचारी का नाश करने की शक्ति प्रदान की। हिमालय ने दुर्गा की सवारी के लिए शेर की सवारी दी। दुर्गा और राक्षस में भयानक युद्ध हुआ। संसार में बड़ी उथल-पथल मची मगर अंत में राक्षस पराजित हुए। दुर्गाजी ने अपनी तलवार से पापियों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। सभी देवता दुर्गा के बहुत आभारी हुए और दुर्गा से आश्वासन लिया कि दुनिया पर जब भी मुसीबतें आएंगी, दुनिया को जुल्म से छुटकारा दिलाने के लिए दुर्गामाता वहां पहुंच जाएगी। इस दिन से दुनिया को जुल्म से छुटकारा दिलाने और जालिमों को मिटा देने वाली शक्ति के रूप में दुर्गा की पूजा की जाती है।

आषाढ़ अर्थात् सितंबर-अक्टूबर में जब वर्षाऋतु खत्म होती है गर्मी कम होनी शुरू हो जाती है और हवाओं में हल्की सर्दी का

चित्र : दुर्गा की प्रतिमा

आभास होने लगता है, और धान की खेती भरपूर हो जाती है, तब बंगाल में दुर्गा पूजा मनाई जाती है। यह बंगाल का सब से बड़ा त्योहार है। यह उस क्षेत्र में पाप पर पुण्य की विजय के रूप में मनाया जाता है। दुर्गा तेज और शक्ति की देवी है जिस के दसों हाथों में हथियार होते हैं और जिस की माला एक भयानक भैंसे के खून में डूबी रहती है। दुर्गा माता के सिर पर शिवजी विराजमान होते हैं जो पुण्य को जाहिर करते हैं और दोनों ओर के चार बच्चे सरस्वती, लक्ष्मी, गणेश, कार्तिकेय बैठे रहते हैं।

पुराने जमाने में बंगाली जमींदार अपनी हवेलियों में दुर्गा पूजा का प्रबंध करते थे। दुर्गा की मूर्ति बनाने के लिए लोग बांस, कागज, रंग, फूल और हार मोती लाते थे। सारा गांव दिन रात मेहनत करके दुर्गा की झांकी तैयार करता था। ब्राह्मण पूजा करते थे और मुस्लिम संगीतकार साज बजाते थे। हवेली पर इलाके के सारे लोगों का निमंत्रण होता था। यही नहीं बल्कि जमींदार ग़रीबों को कपड़े भी दिया करते थे।

अब आम लोग भी दुर्गा पूजा का प्रबंध करते हैं। दुर्गा पूजा से कई सप्ताह पहले वालेंटीयर चंदा लेना शुरू कर देते हैं। हर क्षेत्र की पार्टियां ज़ोर-शोर से पूजा की व्यवस्था करती हैं। बाजार रात-दिन खुले रहते हैं, सड़कों पर भीड़ बहुत बढ़ जाती है। पार्कों और चौराहों पर पूजा के पंडाल बनाए जाते हैं, जिन में कई प्रकार के चित्रों और झांकियों से सजावट की जाती है। मर्द, औरतें और बच्चे नए कपड़े पहनते हैं तथा सज-संवर कर पूजा में शामिल होते हैं। हर तरफ भजन और गानों का शोर होता है। इस अवसर पर पुस्तकों और पत्रिकाओं की भी बिक्री होती है। पत्रिकाओं और अखबारों में दुर्गा पूजा के बारे में लेख और कहानियां छपती हैं।

औरतें घरों में बंगाली मिठाइयां बनाती हैं जो पड़ोसियों, संबंधियों को खिलाई जाती हैं।

दुर्गा पूजा तीन दिन चलती है। आखिरी दिन दुर्गा की मूर्ति को ट्रकों और बैलगाड़ियों पर सजा कर जय जयकार कर के नदी में विसर्जित कर दिया जाता है। नदी से वापस आकर विजय-उत्सव मनाया जाता है, शुभकामनाएं दी जाती हैं और गले मिलकर शिकवे-गिलों को भुला दिया जाता है।

दुर्गा पूजा बंगाल से बाहर जहां-जहां बंगाली आबादी है, धूम-धाम से मनाई जाती है। इस अवसर पर धार्मिक कार्यक्रम किए जाते हैं जिनमें स्थानीय कलाकार और संगीतकार भाग लेते हैं। हर पार्टी दूसरी से आगे निकलने की धुन में लगी रहती है। इस दिन विशेष पूजा और सजावट होती है। अंतिम दिन एक बहुत बड़े जुलूस में दुर्गा माता की मूर्तियों को यमुना में छोड़ दिया जाता है। यह त्योहार ग़रीब, अमीर सभी को एक साथ मिलाता है।

गणेश-चतुर्थी

अधिकतर महाराष्ट्र में मनाया जाने वाला त्योहार गणेश चतुर्थी या विनायक चतुर्थी भादों अर्थात् अगस्त-सितंबर के महीने में आता है। कहा जाता है कि एक बार महादेव जी स्नान करने के लिए कैलाश पर्वत गए। उन की अनुपस्थिति में पार्वती ने स्नान के बीच अपनी रक्षा के लिए अपने शरीर के मैल से एक पुतला बनाया। इसको जीवित करके पहरेदारी के लिए दरवाजे पर खड़ा कर दिया। जब शिवजी वापस आए तो उस लड़के ने उनको पार्वती के पास नहीं जाने दिया। आक्रोश में आकर महादेवीजी ने बालक का सिर काट डाला। जब पार्वती को गणेश के मारे जाने की जानकारी हुई तो उनको बहुत दुःख हुआ। पार्वती को प्रसन्न करने के लिए महादेव जी ने एक हाथी का सिर काटकर गणेश के धड़ से जोड़ दिया। पार्वती अपने 'बेटे' को पाकर बहुत प्रसन्न हुई। इसी खुशी में गणेश चतुर्थी मनाई जाती है।

महाराष्ट्र में बालगंगाधर तिलक ने गणेश चतुर्थी को लोगों में नई आत्मा फूंकने और एक होकर स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की ओर आकर्षित कराने के लिए अपनाया। आज के दिन सुबह-सवेरे सफेद तिलों का उबटन करके स्नान किया जाता है। दोपहर में गणेश पूजा की जाती है। किसी भी धातु मिट्टी, पत्थर या गोबर के गणेश की मूर्ति का पूजा में प्रयोग किया जाता है। मूर्ति को स्नान कराकर फूलों और खुशबूओं से पूजा की जाती है। पूजा की थाली में इक्कीस

लड्डू रखे जाते हैं, जिनका भोग लगा कर ब्राह्मणों को खिलाना होता है। और फिर गणेश जी की आरती कर सभी लोग लड्डू खाते हैं,

राष्ट्र में सभी लोग बाजार से नई मूर्तियां खरीद कर लाते हैं। हर रंग, हर मूल्य और हर नाप की गणेश मूर्तियों से बाजार सजे रहते हैं। पूजा की थाली में धान के आटे और गुड़ इत्यादि के मुदक बना कर रखे जाते हैं। प्रसाद में केवड़ा, कमल का फूल और मुदक बांटे जाते हैं। इस दिन कुछ लोग गौरी पूजा भी करते हैं।

तिलक के समय में इस अवसर पर भजन, कीर्तन और नाटक भी होते हैं। बच्चे शिवाजी के जमाने की फौजी वरदी पहन कर परेड करते और राष्ट्रप्रेम के गीत गाते सड़कों पर निकलते हैं।

दस दिन तक चलने वाले इस धूम धाम भरे त्योहारों पर नाच-गाने और मूर्तियां खरीदने के लिए चंदा किया जाता है। घरेलू नौकर जिन्हें मुम्बई में "रामा" कहते हैं, नाचते-गाते हैं। चतुर्थी वाले दिन गणेश जी की सारी छोटी-बड़ी मूर्तियों का बहुत बड़ा जुलूस निकाला जाता है, बच्चे गाड़ियों पर चढ़ कर तमाशा देखते हैं। आमतौर पर सब से पुराने मंदिर की गणेश मूर्ति को जुलूस में सबसे आगे रखा जाता है।

भजन गाते, ढोल की ताल पर नाचते, नारे लगाते लाखों लोग इन जुलूसों में शामिल होते हैं। सड़कों के दोनों ओर और छतों पर खड़े लोग जुलूस पर फूल बरसाते हैं। इसके बाद मूर्तियों को पानी के हवाले कर दिया जाता है। सब लोग अगले साल गणपति पूजा के जल्दी आने की प्रार्थना करते अपने-अपने गांव और घरों को लौट पड़ते हैं।

जगन्नाथ रथयात्रा

भगवान जगन्नाथ की रथयात्रा उड़ीसा का सबसे मुख्य धार्मिक त्योहार है। यह रथयात्रा हर साल आषाढ़ यानी जून-जुलाई के महीने में निकाली जाती है। हिंदू धर्म का यह विश्वास है कि चार धाम— बद्रीनाथ, द्वारकानाथ, रामनाथ और जगन्नाथ पुरी में से किसी एक की यात्रा किए बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

कहा जाता है कि एक बार सुभद्रा ने द्वारका धाम के दर्शन की इच्छा प्रकट की। कृष्ण जी अपने भाई बलराम के साथ सुभद्रा का रथ अपने रथों के बीच लेकर वहां पहुंचे और उनकी इच्छा पूरी की। उस दिन की याद में हर साल गुजरात और पुरी विष्णु मंदिरों में यात्रा निकाली जाती है।

पुरी के मंदिर में से उस दिन मूर्तियां निकाल कर उनको एक चबूतरे पर रखा जाता है और पवित्र जल के एक सौ आठ घड़ों से भगवान जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा की मूर्तियों को स्नान कराया जाता है। स्नान के दौरान वेद मंत्र पढ़े जाते हैं और श्रद्धालु ढोल-बाजे बजाते हैं। स्नान के बाद मूर्तियों को नए वस्त्र पहनाए जाते हैं और रंग किया जाता है। इस प्रथा में पंद्रह दिन लग जाते हैं, जिसके दौरान श्रद्धालु दर्शन के लिए आते हैं।

इसके बाद असली रथ-यात्रा शुरू होती है। जगन्नाथ मंदिर से रथ पर, जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा की मूर्तियों का जुलूस निकाला जाता है। यह तीनों मूर्तियां तीन रथों पर विराजमान होती हैं। सबसे
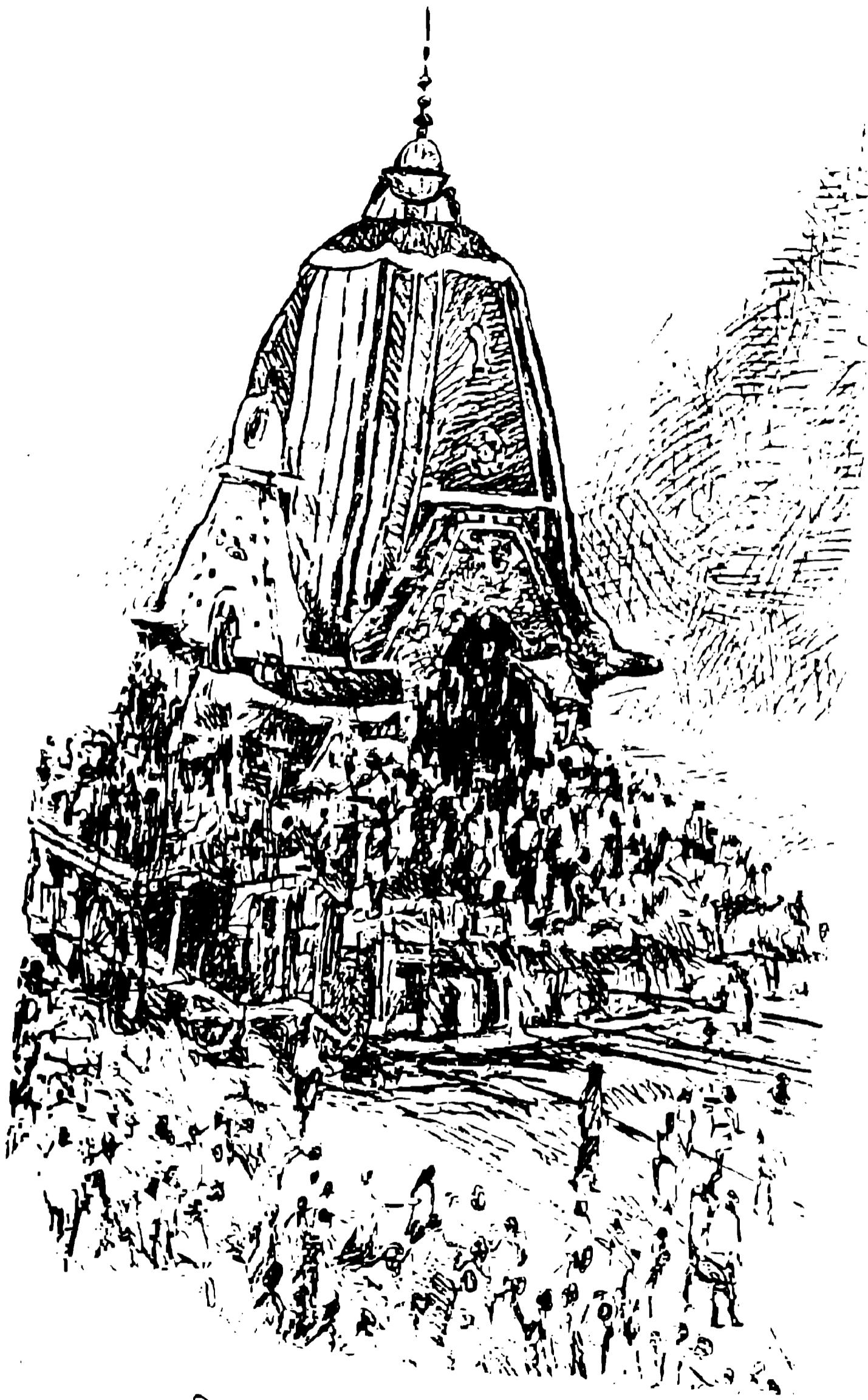
चित्र : भगवान श्रीजगन्नाथ की रथयात्रा

बड़ा रथ पैंतालिस फुट ऊंचा और पीले रंग का होता है। इस में सोलह पहिए होते हैं और इस पर भगवान जगन्नाथ की मूर्ति सजी होती है। कुछ छोटा रथ बलराम का होता है जो नीले रंग का होता है। सुभद्रा जी का रथ सब से छोटा होता है। ज़ात-बिरादरी की ऊंच-नीच और छुआ-छूत को भूलकर लाखों लोग रथों के साथ चलते हैं और रथों को रस्सियों से खींचते हैं। सारा वातावरण ''जगन्नाथ की जय'', ''बलभद्र की जय,'' ''सुभद्रा की जय'' से गूंजता रहता है।

कहा जाता है कि जगन्नाथ मंदिर को विश्वकर्मा ने बनवाया था। यह भारतीय निर्माण शैली का बहुत अच्छा नमूना है। इसे देखने के लिए विदेशों से बहुत पर्यटक आते हैं।

तीनों रथ शेर दरवाजे से गुजर कर कंदचीबाड़ी जाते हैं, जिसे देवताओं का बाग़ कहा जाता है। वहां से सात दिनों के बाद रथ वापस जगन्नाथ मंदिर लाए जाते हैं।

भगवान जगन्नाथ, विष्णु के अवतार थे। उनका मंदिर नीलांचल पहाड़ में है। लोगों का मानना है कि जो इस दिन भगवान की मूर्ति को छू लेता है, वह पुनर्जन्म के चक्कर से निकल जाता है। यात्रा के आने के बाद पुरी के राजा के परिवार, जिनके वंश के लोगों ने यह मंदिर निर्माण करवाया था, मूर्तियों के सामने श्रद्धा प्रकट करता है और रथों की सफाई का पवित्र कार्य पूरा करता है।

बुद्ध पूर्णिमा

बुद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध का जन्म दिन बुद्ध पूर्णिमा के रूप में मनाया जाता है। उनका जन्म छः सौ पचास ईसा पूर्व लुम्बनी गांव में पूर्णिमा के दिन हुआ था। बुद्ध जयंती वैशाख अर्थात् अप्रैल-मई के महीने में आती है। उन्होंने राजा शुद्धोधन के घर में आंखें खोली थीं। उनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था। गौतम उन का पारिवारिक नाम था और उन की बुद्धि के कारण उन्हें बुद्ध के नाम से प्रसिद्धि मिली। उनके जन्म के समय ही ज्योतिषी ने बताया था कि यह बच्चा दुनिया में नए धर्म की स्थापना करेगा।

राजकुमार होने के चलते उनका पालन-पोषण शाही ठाट-बाट से हुआ था। उन को शिकार पर भी जाना पड़ता था लेकिन गौतम जानवरों और पक्षियों पर कभी तीर नहीं चलाते थे। वह आम बच्चों की तरह खेलते-कूदते नहीं थे, बल्कि हर समय दुनिया के बारे में चिंतन किया करते थे। युवा होने पर उनका ब्याह राजकुमारी यशोधरा से कर दिया गया। उनसे एक बेटा राहुल पैदा हुआ। परंतु पत्नी और बेटे की मुहब्बत भी उन को दुनियादारी की ओर आकर्षित नहीं कर सकी।

एक दिन उन्होंने अपाहिज और कमजोर आदमी को रोते देखा। उन्होंने अपने सारथी से पूछा, यह कौन आदमी है? सारथी ने बताया कि यह बुढ़ापे और बीमारी का मारा हुआ एक आदमी है। राजकुमार ने पूछा कि क्या संसार के सभी लोगों का यही अंजाम होता है?

सारथी ने उत्तर दिया, "दुनिया में जो भी पैदा होता है, उस का अंजाम ऐसा ही होता है।" गौतम ने फिर पूछा कि "क्या ऐसे अंजाम से बचने का कोई रास्ता है?" सारथी ने जवाब दिया, "नहीं, इस अंजाम से कोई मनुष्य नहीं बच सकता।"

इसके बाद गौतम ने कुछ लोगों को एक अर्थी ले जाते हुए देखा। उन्होंने सारथी से सवाल किया "यह क्या है ?" सारथी ने बताया कि "यह वही राह है जिस पर सब को एक दिन जाना है।" गौतम ने कहा "क्या मैं भी इसी तरह ले जाया जाऊंगा?" सारथी ने जवाब दिया "इस दुनिया में जो भी पैदा होता है, उसे न चाहते हुए भी मौत का निशाना बनना ही पड़ता है।"

इसके बाद वह राजमहल लौट आए। खोए-खोए, उदास, खामोश सोचते रहे कि दुनिया में इतना दुःख क्यों है? दुःखों से कैसे बचा जा सकता है? क्या दुनिया सही में रहने के लायक जगह है? इसके बाद वह दुनिया के बंधन से आजाद हो गए। एक दिन पत्नी और बेटे को सोता छोड़कर निकल खड़े हुए। शाही लिबास छोड़ करके भिखारियों का वस्त्र धारण कर लिया। बैरागी बन गए। जंगल-जंगल ज्ञान की खोज में भटकते फिरे। तीर्थों की धूल छानते रहे। अंत में गया नगरी के समीप निरंजन नदी के किनारे भूखे पेट तपस्या करने लगे। यहीं पेड़ के नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ कि इच्छाएं ही मनुष्य के दुःखों की जड़ हैं, और वह गौतम बुद्ध बन गए।

गया से वह सारनाथ गए, जहां उन्होंने अपने शिष्यों के साथ पहला संघ क़ायम किया। अब वह नगर-नगर घूमते और संसार को मोह माया त्याग की शिक्षा देते। यहां तक कि राजा, राजकुमार, मंत्री, सिपाही, किसान, अमीर, निर्धन, महिलाएं, पुरुष सभी उनके

भक्त बनते गए। महिलाओं का एक संघ भी बनाना पड़ा। गौतम बुद्ध के माता-पिता भी भिक्षु बन गए। उन के शिष्यों ने विदेशों में भी बौद्ध धर्म को फैलाया। सम्राट अशोक बौद्ध धर्म का बड़ा अनुयायी था। वैशाख में बुद्ध को निर्वाण प्राप्त हुआ।

बुद्ध जयंती को बुद्ध के मानने वाले सफेद कपड़े पहनते हैं। सभी बुद्ध विहार में इकट्ठे होते हैं और भिक्षुओं को दान देते हैं। उनके उपदेश सुनते हैं और बौद्ध धर्म के पांच सिद्धांतों "पंचशील" पर चलने की शपथ को ताजा करते हैं। उस दिन बौद्ध लोग मांस नहीं खाते, गरीबों में खीर बांटते हैं और एक दूसरे को खिलाते हैं। इस दिन पक्षियों को पिंजरे से आजाद किया जाता है। घरों में जातक कथाओं का पाठ होता है। दीवारों पर तस्वीरें लगाई जाती हैं और रोशनी की जाती है। श्रीलंका, जापान, नेपाल, भूटान, सिक्किम, चीन, तिब्बत, थाइलैंड और कंबोडिया इत्यादि में अपने-अपने तरीकों से बुद्ध पूर्णिमा मनाई जाती है। बौद्ध धर्म शांति, मानवता और अहिंसा का धर्म है। यह जात-पात, छूआ-छूत और पूजा का विरोध करता है।

महावीर जयंती

जैन धर्म के संस्थापक महावीर स्वामी का जन्म पांच सौ ईसा पूर्व वैशाली राज के कुंदल गांव में हुआ था। उन का पैदाइशी नाम वर्धमान था। वह भी गौतम बुद्ध की तरह क्षत्रिय राजकुमार थे। वह भी वैदिक धर्म के कर्मकांड, जात-पात, बलि की प्रथा और छूआ-छूत को मिटाने के लिए संन्यासी बने थे। वह बचपन से ही निडर परंतु गंभीर और एकांत में रहने वाले व्यक्ति थे। बचपन में एक पागल हाथी को वश में करने के कारण लोग उन को महावीर कहने लगे। उन को जैन धर्म का चौबीसवां और आखिरी तीर्थंकर जाना जाता है।

उनकी शादी यशोदा नाम की एक सुंदर राजकुमारी से हुई लेकिन घर गृहस्थी का बंधन उन्हें घर छोड़ देने से न रोक सका। अट्ठाईस वर्ष की आयु में उनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। तीस साल की उम्र में वह राज-पाट त्याग कर वन में निकल गए। बारह साल तक महावीर स्वामी ने कड़ी तपस्या की। वह ब्रह्मचारी व्रत को अपनाए रहे। बारह वर्ष के बाद जभका ग्राम के बाहर भजपालीका नदी के किनारे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ।

महावीर ने धर्म प्रचार का काम प्रारंभ किया तो राजगृह का राजा उन का भक्त बन गया। जल्द ही बहुत से राजा और राजकुमार उन के मानने वाले बन गए। तीस वर्ष तक महावीर जी अपने धर्म प्रचार मे लगे रहे। उन्होंने अहिंसा और ब्रह्मचर्य, ईमानदारी, धन

न जमा करना और सच्चाई–पांच सिद्धांतों का प्रचार किया। यह पांच सिद्धांत महाव्रत कहलाते हैं। जैन धर्म में स्वयं को कष्ट देकर मोक्ष प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य समझा जाता है।

महावीर स्वामी ने सभी मनुष्यों को एक नजर से देखा और जात-पात और छूआ-छूत का विरोध किया। उनके अनुसार इच्छाओं को क़ाबू में रखते हुए दुनिया में सादा जीवन व्यतीत करना चाहिए। उन्होंने बहत्तर वर्ष की आयु में दीवाली के दिन पावापूरी के स्थान पर निर्वाण प्राप्त किया।

देश भर में महावीर जयंती मनाई जाती है। चूंकि राजस्थान और गुजरात में जैन धर्म को मानने वाले अधिक हैं, इसलिए यहां ज्यादा धूम-धाम दिखाई देती है। जैन तीर्थयात्री गर्नार के प्राचीन मंदिर में जाते हैं जहां महावीर जयंती का विशेष धार्मिक उत्सव होता है। पूर्वी भारत के लोग भारत में पावापुरी के स्थान पर त्योहार मनाते हैं। कलकत्ता के पारसनाथ मंदिर में भी उस दिन बहुत धूम-धाम होती है। इसके अतिरिक्त हर नगर और गांव के जैन मंदिरों से महावीर स्वामी की मूर्ति का जुलूस और झांकियां निकाली जाती हैं। मेले भी लगते हैं। जैन लोग इस दिन उपवास रखते हैं जो अगले दिन सवेरे तोड़ा जाता है। इस अवसर पर पवित्र पुस्तक ''सम्मेलक सूत्र'' का पाठ भी किया जाता है। महावीर जयंती सादगी और भाईचारे का संदेश लेकर आती है।

गुरु-पर्व

भारत की धरती पर बड़े-बड़े संत, फ़कीर और ज्ञानी हुए हैं। इन विशाल सूफी-संतों में गुरु नानक देव का नाम बहुत महत्वपूर्ण है। वह लाहौर से कुछ दूर तिलौंडी नाम के गांव में 1429 ई. में पैदा हुए थे। यह स्थान अब पाकिस्तान में है और 'ननकाना साहब' के नाम से जाना जाता है। नानक जी बचपन ही से बहुत बुद्धिमान और धार्मिक विचार के थे। उनकी धार्मिक श्रद्धा देख कर उन को शिक्षा देने वाले मौलवी और पंडित भी दंग रह गए। यूं तो देखने में नानक देव का दिल पढ़ाई लिखाई में नहीं लगता था लेकिन गहरी सोच रखने के कारण वह संस्कृत और अरबी, फारसी के बड़े विद्वान बन गए।

गांव के दूसरे बच्चों की तरह उन को भी बचपन में मवेशी चराने की जिम्मेदारी दी गई। लेकिन वह गाय-भैंसों को जंगल में छोड़ देते थे और स्वयं परमात्मा की भक्ति में डूब जाते थे। जवान होने पर नानक देव के पिता ने उन को कुछ पैसे व्यवसाय के लिए दिए। लेकिन उन्होंने सारे पैसे साधू-संतों की सेवा में खर्च कर दिए और खाली हाथ घर वापस आ गए। अठारह साल की आयु में नवाब दौलत खां के यहां उनको नौकरी मिल गई। वहां भी नानक जी ग़रीबों की सेवा में लगे रहे, एक दिन तेरह सेर आटा तौलते समय "तेरा-तेरा" कहते गए और सारा आटा एक ग़रीब को दे दिया। परिणामस्वरूप नौकरी से हटा दिए गए।

उसी साल उनकी शादी सुलक्षणा देवी से हुई। आप के दो बेटे लक्ष्मी दास और श्री चन्द पैदा हुए। लेकिन दुनियादारी से जी ऊब गया था, इसलिए तीस वर्ष की आयु में बैराग ले लिया। आप ने देश भर में घूम-घूम कर नानक पंथ का प्रचार किया। गुरु नानक हिंदू समाज की ज़ात के बंटवारे और सतीप्रथा के खिलाफ थे। आप निराकार ईश्वर के भक्त थे और मेहनत से रोजी कमाने का पाठ देते थे। एक बार एक धनवान आदमी का निमंत्रण छोड़ कर उन्होंने एक बढ़ई के घर की रूखी-सूखी रोटी खाई। जब धनवान ने शिकायत की तो नानक जी ने दोनों की रोटियों को निचोड़ कर दिखाया। गरीब की रोटी में से दूध और रईस आदमी की रोटी में से खून की बूंदें टपकीं। यह देख कर दौलतमंद आदमी बहुत शरमाया, क्योंकि उसने धन गरीबों का खून चूस कर प्राप्त किया था।

कहा जाता है कि गुरु नानक जी मक्का और बग़दाद भी गए, जहां खलीफा ने उनका जोरदार स्वागत किया। फिर वह ईरान होते हुए बुखारा पहुंचे। देश लौटकर वह गुरूदासपुर जिला के गांव कर्तारपुर में बस गए। 1539 ई. को आप अपने ईश्वर से जा मिले। आप को मानने वाले "सिक्ख" कहलाते हैं।

हर कार्तिक पूर्णिमा को अक्टूबर-नवंबर के महीने में गुरु नानक जी का जन्म दिवस सिक्ख लोग गुरुपर्व के रूप में मनाते हैं। गुरु नानक का कहना था कि सारे मनुष्य बराबर हैं वह सिक्ख धर्म के आदि गुरु हैं। उनके कथन, वचन "गुरुग्रंथ साहब" में इकट्ठा किए गए हैं जो सिक्खों की पवित्र पुस्तक है। गुरुपर्व को गुरुद्वारों को खूब सजाया जाता है। उनके भक्त गुरुबाणी गीत के रूप में गाते हैं। इस दिन प्रभात फेरियां निकाली जाती हैं। शाम को बहुत

बड़ा जुलूस निकाला जाता है, जिसके रास्ते में जगह-जगह शर्बत, फल और खाने के सामान बांटे जाते हैं। सारे रास्ते गुरुग्रंथ साहब का पाठ होता रहता है। रास्ते में लंगर लगते हैं। जहां कढ़ा प्रसाद बांटा जाता है। गुरु गोविंद सिंह सिक्खों के दसवें और अंतिम गुरु थे। उनके बाद "खालसा पंथ" गुरु ग्रंथसाहब की निगरानी में चलता है। गुरुग्रंथ साहब, गुरु अर्जुन देव के "आदि ग्रंथ" से कुछ भिन्न है। इसमें गुरु नानक, संत कबीर और दूसरे सूफियों की अच्छी-अच्छी बातें शामिल हैं। गुरु गोविंद जी का जन्म दिवस भी गुरु पर्व कहलाता है। जो पूस अर्थात् दिसंबर—जनवरी में आता है। यह भी गुरुनानक के जन्मदिन की तरह मनाया जाता है। इस दिन सिक्ख धर्म के अनुयायी घरों में दीवाली की तरह रोशनियां करते हैं और बच्चे पटाखे, फुलझड़ियां छोड़ते हैं। गुरु गोविन्द सिंह का जन्म पटना में हुआ था। इस दिन गुरुद्वारा पटना साहब में दर्शन करने वालों की भीड़ होती है। इस दिन गुरुग्रंथ साहब का जुलूस निकाला जाता है, जिसके आगे-आगे पांच प्यारे चलते हैं। इसके अतिरिक्त गुरु पर्व पर अखंड पाठ होता है।

दीवाली

दीवाली भारत का सबसे बड़ा त्योहार है। यह कार्तिक के महीने अर्थात् अक्टूबर-नवंबर में आती है। इन दिनों मौसम बहुत प्यारा होता है। खुशहाली की देवी लक्ष्मी का स्वागत करने के लिए लोग दीवाली से पहले घरों को साफ करते हैं और सजाते हैं।

कहा जाता है कि दीवाली का पर्व अयोध्या में पहली बार उस समय मनाया गया, जब रामचंद्रजी, लंका के अत्याचारी राजा रावण को हरा कर अपनी राजधानी में प्रवेश हुए थे। राम, लक्ष्मण और सीता जी चौदह वर्ष के बाद अयोध्या आए थे इसलिए नगर के लोगों ने दीप जला कर अपने प्रिय राजा का स्वागत किया था। चूंकि यह रात पाप के मुकाबले में पुण्य की जीत के रूप में मनाई जाती है, इसीलिए मालवा का राजा भोज दीवाली को ''सुखरात्रि'' अर्थात् सुख की रात कहता था। पुराने जमाने में लोग दीवाली पर नाचते-गाते थे, जुआ खेलते थे और सांड़ों की लड़ाई का तमाशा देखते थे। कुछ लोगों का विश्वास है कि दीवाली का त्योहार उस दिन की याद ताजा करने के लिए मनाया जाता है, जब लक्ष्मी को राक्षसों के राजा बली की कैद से छुटकारा मिला था। शिव भगवान ने बली का अंत कर के लक्ष्मी को सातवें आसमान से स्वतंत्र कराया था। गोकुल में दीवाली से अगले दिन भगवान श्री कृष्ण और गोवर्धन पर्वत की पूजा की जाती है। जैन धर्म के अनुयायी भी दीवाली मनाते हैं क्योंकि इसी दिन भगवान महावीर को निर्वाण मिला था। यह

भी कहा जाता है कि बहादुर और न्यायप्रिय राजा विक्रमादित्य इसी दिन उज्जैन की गद्दी पर बैठा था।

अलबैरूनी ने पुराने जमाने की दीवाली के बारे में लिखा है कि कार्तिक की पहली तारीख को लोग नहा धोकर उत्सव मनाते थे, पान खाते थे। गरीबों को इस दिन खाना खिलाया जाता था और दान दिया जाता था। रात को घरों में रोशनी कर के लक्ष्मी की प्रतीक्षा में दरवाज़े खुले रखे जाते।

आजकल भी दीवाली के अवसर पर घरों और बाजारों में रोशनी की जाती है। बिजली के बल्व, रंग बिरंगी मोमबत्तियां और मिट्टी के दीये जलाए जाते हैं। बच्चे बड़े हर्षोउल्लास से दीवाली मनाते हैं। क्योंकि इस दिन उन को नए कपड़े पहनने के लिए मिलते हैं, तरह-तरह के पटाखे, फुलझड़ियां और अनार छोड़ने के लिए मिलते हैं। फल मिठाई खाने को मिलते हैं, फर्श पर रंगबिरंगी रंगोली बनाई जाती है।

दीवाली पर कुछ लोग जुआ खेलते हैं क्योंकि वह मानते हैं कि इस रात को शंकर जी ने पार्वती के साथ जुआ खेला था। इस बुरी प्रथा से झगड़े होते हैं और मेहनत की कमाई लुटती है।

दीवाली वाले दिन हिंदू-मुसलमान एक दूसरे के घर जाते हैं, मिठाई बांटते हैं और एक दूसरे को फल खिलाते हैं। दुकानदार और व्यापारी इस दिन नए बही-खाते शुरू करते हैं और अपने मिलनेवालों और नौकरों को मिठाई, और बर्तन उपहार में देते हैं। दीवाली का पर्व रोशनी, संपन्नता और खुशी का प्रतीक है।

दशहरा

हर वर्ष सितंबर-अक्टूबर के महीने में दस दिनों तक दशहरा मनाया जाता है। यह उत्तरी भारत का प्रमुख त्योहार है। शुरू के नौ दिनों में रामलीला होती है और दसवें दिन रावण दहन होता है।

दशहरा वास्तव में रामचन्द्रजी को, जालिम राजा रावण पर विजय की खुशी में मनाया जाता है। दस दिन तक रामायण के विभिन्न भागों को नाटक के रूप में जगह-जगह दिखाया जाता है। गांव और शहरों में रामायण दिखाने के लिए पहले से पंडाल लगा दिए जाते हैं, जहां स्थानीय कलाकार राम, लक्ष्मण, सीता, रावण, हनुमान और दूसरे पात्रों का रोल अदा करते हैं। रामलीला अधिकतर रात में दिखाई जाती है और इस अवसर पर विशेष प्रकाश का प्रबंध किया जाता है। रामचंद्र जी से श्रद्धा रखने वाले पाबंदी से रामलीला देखते हैं और विजय-दशमी के दिन रावण के बहुत बड़े पुतलों को जलाया जाता है। ऐसा कहा जाता है लंका का राजा रावण एक दिन धोखा देकर रामचंद्र जी की धर्मपत्नी सीता का अपहरण कर ले गया था। अपनी और सीता की मान-सम्मान की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण ने तलवार उठाई, लंका पर चढ़ाई की और उस को जला कर रावण का अंत किया। अयोध्या के राजा रामचंद्र जी जब सीता और लक्ष्मण के साथ अपनी राजधानी वापस पहुंचे तो रात को विजय की खुशी में सारे नगर में दीप जलाए गए, जिस की याद में आज दीवाली मनाई जाती है। हनुमान और उनकी

वानर-सेना ने रामजी की सहायता की थी क्योंकि वह बड़े रामभक्त थे।

यूं तो रामलीला भारत के बहुत से भाग में होती है लेकिन बनारस के रामनगर की रामलीला, उन में सबसे बड़ी और लंबी होती है। यह एक महीने तक जारी रहती है। यह रामलीला बनारस के राजा ने शुरू कराई थी। इस रामलीला में अयोध्या, अशोक-वाटिका, श्रीलंका और वन के अलग-अलग दृश्य बहुत बड़े मैदान में तैयार किए जाते हैं। यहां जो रामलीला दिखाई जाती है वह तुलसीदास की अवधी में रचित रामचरितमानस का मंचित रूप होता है। तुलसीदास ने यह कहानी चौपाइयों के रूप में अकबर बादशाह के काल में लिखी थी, आम लोग इसी को पढ़ते, गाते हैं और समझते भी हैं।

बड़ी-बड़ी रामलीलाओं में इन दिनों स्त्रियों को भी कलाकारों के रूप में शामिल किया जाता है। लेकिन गांवों में आज भी स्त्रियों का रोल सुंदर लड़कों के द्वारा किया जाता है। रामलीला के पात्र चमकदार रंगबिरंगे कपड़े पहनते रहते हैं। जो पुराने ज़माने की हिन्दू सभ्यता की याद ताजा करते हैं। राजा मोतियों लगे ताज पहनते हैं रानियां आभूषणों और शृंगार के श्रेष्ठ सामान से सजी होती हैं। दर्शक बुरे काम करने वालों की हार पर तालियां बजाते हैं। और दूसरे पात्रों की सहानुभूति में दुःखी होते हैं। हनुमान श्रद्धा के साथ अपनी वीरता के गुण दिखाते हैं।

दशहरे के दिन रावण उस के भाई कुंभकरण और उस के पुत्र मेघनाथ के सैकड़ों फुट ऊंचे पुतले जलाए जाते हैं, जिन में पटाखे भरे होते हैं। इसी तरह पाप की शक्ति का अंत होने के बाद शाम को भरत-मिलाप का दृश्य दिखाया जाता है, जब रामचन्द्र जी विजय

प्राप्त करके अयोध्या में अपने भाई भरत के गले मिलते हैं।

तमिलनाडु में "नवरात्रों" में लक्ष्मी पार्वती और सरस्वती की पूजा की जाती है। दसवें दिन लोग अपने-अपने कामों पर वापस जाते हैं और बच्चों की इस दिन से शिक्षा की शुरुआत की जाती है। इसी तरह कर्नाटक में दशहरे वाले दिन मैसूर के चमण्डयेशुरी मंदिर में लाखों लोग पूजा करते हैं। केरल में यह पर्व कम धूम-धाम से मनाया जाता है। यहां लोग विजय लक्ष्मी के दिन केवल पूजा करते हैं।

दशहरा पाप पर पुण्य की शक्तियों के विजय का पर्व है। यह कुल्लू (हिमाचल प्रदेश) में इतने शानदार तरह से मनाया जाता है कि लोग दूर-दूर से इसे देखने आते हैं।

रक्षा-बंधन

बहन-भाई का यह पवित्र पर्व सावन अर्थात् जुलाई-अगस्त में मनाया जाता है। कहा जाता है कि एक बार देवताओं और राक्षसों के बीच युद्ध छिड़ गया। बारह वर्ष लंबे इस युद्ध में देवता हारने लगे तो इंद्र देवता की पत्नी इंद्रानी ने इनके हाथ पर श्रावणी पूर्णिमा के दिन रक्षा पोटली बांध दी, जिस के कारण राक्षसों को युद्ध के मैदान से भागना पड़ा। इसी प्रथा पर आज भी भारत में विश्वास किया जाता है। माना जाता है कि अगर श्रावणी पूर्णिमा के दिन किसी प्रिय के हाथ पर राखी बांधी जाती है तो वह सारे वर्ष सुरक्षित और स्वस्थ रहता है।

पुराने ज़माने में राखी या रक्षा-बंधन एक और रूप में भी मनाया जाता था। सावन के महीने में ऋषि-मुनि गांव और शहरों में घूम-घूम कर लोगों को भाईचारे, शांति का संदेश देते थे। श्रावणी के दिन वह हर गांव में यज्ञ करते थे और लोगों को गुरुमंत्र देते थे। इस दिन भक्त लोग यह शपथ लेते हैं कि वह सारी उम्र सच्चाई और प्रेम के मार्ग पर चलेंगे। इस शपथ को याद दिलाने के लिए ऋषि लोग भक्तों के दाएं हाथ में राखी और गले में जनेऊ की गांठ बांध देते हैं।

एक बार गुजरात के राजा बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर हमला कर दिया। चित्तौड़ की रानी करमवती ने अपनी रक्षा के लिए हुमायूं को राखी भेजी। हुमायूं पुरानी दुश्मनी भुलाकर कच्चे धागे से बंधा

हुआ चित्तौड़ की रक्षा के लिए चला आया। उसने एक बहादुर भाई का कर्तव्य पूरा करते हुए बहादुर शाह को मार भगाया और मुंहबोली बहन करमवती की राखी का पूरा सम्मान किया।

रक्षा-बंधन मनाने के कारण कुछ भी हो, लेकिन आज यह त्योहार बहनों का दिन बन गया है, जो भाइयों के साथ उन की मुहब्बत के पवित्र बंधन को हर साल ताजा करता है। राखी के दिन से काफी पहले बाजारों में तरह-तरह की रंग-बिरंगी सस्ती मंहगी राखियां नजर आने लगती हैं। बहनें, भाइयों के लिए मनपसंद राखियां खरीद कर लाती हैं। त्योहार के दिन सुबह-सवेरे बहनें नहा-धोकर अच्छे-अच्छे कपड़े पहनती हैं। भाई भी साफ सुथरे कपड़े पहन कर चौकी पर बैठ जाते हैं, बहन भाई के माथे पर तिलक लगती है, भाई के हाथ में राखी बांधती है और फिर उसे अपने हाथ से मिठाई खिलाती हैं। भाई थाल में राखी के पैसे डालकर बहन की दुआएं लेते हैं। शादीशुदा बहन भी अपने बाल-बच्चों के साथ राखी के दिन भाइयों के घर पहुंच जाती है। अब तो डाक से राखी भेजने का चलन भी चल पड़ा है। बच्चे, सभी इस अवसर पर खुशियां मनाते हैं, मिठाई खात्ते हैं और दावतें उड़ातें हैं। जिनके सगे भाई-बहन नहीं होते, वह मुंह बोले भाइयों को राखी बांध कर इस कमी को पूरा करती है।

इसी दिन ब्राह्मण लोग श्रावणी मनाते हैं। बच्चों के आठ साल पूरा होने पर, उस दिन जनेऊ पहनाने की रस्म अदा की जाती है। बच्चों को वेदों की शिक्षा देने के लिए इसी दिन गुरुकुल भेजा जाता है। बंगाल, उड़ीसा, तमिलनाडु, केरल, आंध्रप्रदेश और गुजरात इत्यादि में श्रावणी अधिक मनाई जाती है। इस तरह भारत में एक दिन दो पर्व मनाए जाते हैं।

होली

होली मस्ती और राग रंग का पर्व है। यह फाल्गुन के अंत अर्थात् फरवरी-मार्च में मनाई जाती है। होली का त्योहार जाड़े का मौसम खत्म होने और गर्मी के मौसम प्रारंभ होने की घोषणा होता है। उन दिनों गेहूं की बालियां पीली पड़ने लगती हैं। और किसान की मेहनत

चित्र : होली मनाते लोग

रंग लाने लगती है।

कहा जाता है कि एक अत्याचारी राजा था हिरणकश्यप। उसका बेटा प्रह्लाद, रामभक्त था। पिता ने प्रह्लाद को जलाने का प्रयास किया लेकिन विष्णु जी की कृपा से प्रह्लाद बच गया, परंतु उस की बुआ होलिका जलकर ख़तम हो गई। उसी दिन की याद में होली मनाई जाती है। कश्मीर में लोग एक दूसरे पर कीचड़ फेंक क घुड़सवारों के करतब और पहलवानों की कुश्ती देख कर होली मनाते थे।

1750 ई. के एक चित्र में एक हैदराबादी मुस्लिम राजकुमार को राजकुमारियों के साथ होली खेलते दिखाया गया है।

उत्तरी भारत में होली पर बड़ा हंगामा होता है। ब्रज के क्षेत्र के आस-पास की होली तो बहुत ही प्रसिद्ध है। कृष्ण जी के नन्द गांव में राधा के गांव बरसाने की औरतें होली के दिन मर्दों को डंडियों से मारती हैं, मर्द अपने को बचाते हैं। और औरतों पर फूलों से निकाले हुए रंग डालते हैं। यह भी कहा जाता है कि इस दिन विष्णु भगवान की बारात के दृश्य की याद को ताजा किया जाता है। शायद इसीलिए बनारस के मिश्र घाट पर होली खेलने वाले दो फौजों की तरह एक दूसरे का मुक़ाबला करते हैं। मुकाबले के बाद गले मिलते हैं और मिठाइयां खाते हैं।

होली का त्योहार विशेष तौर पर नवयुवकों और बच्चों के लिए आजादी और रंग लेकर आता है। इस दिन हर प्रकार की शरारत और छेड़छाड़ क्षमा कर दी जाती है। इसलिए बड़े छोटे छुप कर और धोखा देकर एक दूसरे पर रंग डालते हैं। होली से पहले एक खुली जगह पर लकड़ियां जमा करके एक ढेर के रूप में जलाई जाती हैं। औरतें होली की पूजा करती हैं। किसान नए गेहूं की

बालियां आग में भून कर आपस में खाते हैं। रात को मुहूर्त देख कर होली जलाई जाती है। अगले दिन रंग खेला जाता है जो आमतौर पर दोपहर तक चलता है।

होली के दो तीन सप्ताह पहले गुब्बारे, गुलाल, रंग और पिचकारियां दुकानों पर बिकने लगती हैं। कुछ लोग गंदगी से होली खेलते हैं और शराब पी कर झगड़ा करते हैं, जिससे त्योहार की प्रसन्नता खाक में मिल जाती है। होली के अवसर पर बड़े-बड़े लोग बच्चे बन जाते हैं। एक दूसरे से नफरत और नाराजगी भुलाकर होली खेलते हैं और गले मिलते हैं।

पुराने जमाने में टेसू के फूलों से रंग निकाल कर एक दूसरे पर डालते थे। जवान, बच्चे, औरतें सब फाग खेलते थे। गांव में लड़कियों की टोलियां नाचती और फाग गाती थीं।

मत बैठो बसंत निहारो रे
उठ होली खेलो निजयारों रे

जवान अखाड़ों में ज़ोर आज़माईश करते थे। नट और गवय्ये नाटक खेलते और रास रचाते थे। नवाब वाजिद अली शाह लखनऊ के कैसर बाग में होली खेलते थे। आजकल दक्षिणी भारत के कुछ भागों को छोड़ कर सारे भारत में होली खेली जाती है। दोपहर बाद लोग नहा धोकर साफ कपड़े पहनते हैं और एक दूसरे से मिलने जाते हैं। फल और मिठाइयां खाते हैं। होली शिकवे-शिकायत दूर करने का त्योहार है। इस दिन कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिस से दूसरों को दुःख पहुंचे।

वसंत

वसंत त्योहार वसंत ऋतु के आगमन पर उसके स्वागत में मनाया जाता है। यह माघ अर्थात् जनवरी-फरवरी में आता है। पुराने जमाने में इस दिन प्रेम के देवता कामदेव की पूजा होती थी। बाग़ों में झूले डाले जाते थे और रंग खेला जाता था। यह वह दिन होते हैं जब फूलों पर भंवरों की गुंजार और आम के पेड़ों पर कोयल की पुकार सुनाई देने लगती है। गेहूं के पौधों पर बालियां आने लगती हैं और पेड़ों पर नई कोंपलें फूटने लगती हैं। हर ओर हरियाली की बहार दिखाई देती है। बृज के क्षेत्र में इस दिन राधा-कृष्ण की पूजा होती है। बंगाल में इस अवसर पर शिक्षा और कला की देवी सरस्वती की पूजा होती है। बच्चे सरस्वती के सामने अक्षर लिखना शुरू करते हैं क्योंकि शिक्षा और संगीत में सफलता पाने के लिए सरस्वती का आशीर्वाद आवश्यक होता है।

महान कवि कालीदास के अनुसार वसंत पंचमी के दिन लोग देवी-देवताओं को रिझाने के लिए अंबर, गुलाल और सरसों के फूलों के गुड़वे बना कर गाते बजाते मंदिर जाते थे। दिल्ली की कहावत है सप्ताह के सात दिन और नौ मेले। अमीर खुसरो के काल में मुसलमान भी वसंत मनाने लगे थे। हज़रत निजामुद्दीन औलिया अपने जवान भांजे की मृत्यु के शोक में बहुत उदास रहते थे, यहां तक कि अपने प्रिय शिष्य अमीर खुसरो से भी मिलना बंद कर दिया था। एक शाम हजरत अमीर खुसरो ने देखा कि हिंदुओं की एक

भीड़ सरसों के फूल लिए कालका जी के मंदिर में जा रही थी। अमीर खुसरो ने भी फूल उठा लिए, पीले कपड़े पहने और ढोलक पर वसंत गाते हजरत निजामुद्दीन औलीया की खान्क़ाह (फकीरों की रहने की जगह) में पहुंच गए। सरसों के फूल हजरत निजामुद्दीन के कदमों में डाल दिए। हजरत मुस्कराए और पूछा "क्या है?" अमीर बोले "आज हिंदू अपने पिया को मनाने जा रहे हैं मैं भी अपने प्यारे को फूल देने आया हूं।" यह कह कर अमीर खुसरो गाने लगे, "अरब यार तोरी वसंत मनाई।" निजामुद्दीन औलिया प्रसन्न हो गए। और दिल्ली में वसंत का मेला प्रारंभ हो गया।

दिल्ली में वसंत की पहली तारीख को लोग क़दम शरीफ पर गुलदस्ते पर मिठाई चढ़ाते थे। तवायफों, नाचनेवालों, भांडों और गाने वालों का जमघट लगा रहता था। शायद "नजीर" अकबराबादी ने ऐसे ही समय के लिए लिखा है :

फिर राग वसंती का हुआ आन के खटका
धोंसे के बराबर वह लगा बाजने मटका
दिल खेत में सरसों के हर एक फूल का अटका
हर बात में होता था इसी तान का लटका
सबकी तो वसंती है पर यारों का वसंता।

अगले दिन दिल्ली वाले ख्वाजा बख्तियार काकी के मज़ार पर उपस्थित होते थे। तीसरे दिन हज़रत निजामुद्दीन की दरगाह में क़व्वाली होती थी। चौथे दिन हजरत शाह हसन के मज़ार पर वसंत होती थी। पाचवें दिन हज़रत शाह तुर्कमान के मज़ार पर मेला लगता था। छठे दिन अमीर गरीब, बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर वसंत की शुभकामनाएं देते थे। सातवें दिन रंगीन मिज़ाज लोग अहदीपुरा जाकर नाच-गाना देखते थे। सब लोग वसंती कपड़े पहनते

थे। मंदिरों में अबीर का भोग लगाया जाता था। वसंत रागरंग का त्योहार था। बहादुर शाह जफर का यह कहना तो बहुत ही प्रसिद्ध हुआ :

सक्ल बन फूल बन रही सरसों

अब वसंत पर पहले जैसी धूमधाम नहीं रही है। गांव में अब भी लोग इस दिन नाचते हैं। घरों में पकवान बनाते हैं। स्कूलों में गाने और मृत्यु के मुकाबले होते हैं। किसान नए अनाज को घी और गुड़ में मिलाकर आग को भेंट करने के बाद स्वयं खाते हैं। लाहौर में वसंत के दिन बहुत भारी पतंगबाजी होती है।

वसंत के दिन प्रकृति सजी-संवरी नजर आती है। और दिलों में प्यार-मुहब्बत के भाव पैदा होते हैं। औरतें और मर्द इस दिन प्रिय को उपहार देते हैं।

बैसाखी

बैसाखी सिक्ख धर्म का बहुत ही प्रमुख त्योहार माना जाता है। इस दिन गुरु गोविंद सिंह ने खालसा पंथ की नींव डाली थी। गुरु गोविंद सिंह सिक्ख धर्म के दसवें और अंतिम गुरु थे इसलिए उन्हें "दशमेश" भी कहा जाता है। गुरुनानक देव सिक्ख धर्म के पहले गुरु हैं, जिन का जन्म "ननकाना साहब" में हुआ था, जो अब लाहौर के पास पाकिस्तान में है।

बैसाखी का त्योहार आमतौर से 13 अप्रैल को बैसाख के महीने में आता है। अब यह पंजाब का सबसे बड़ा पर्व बन गया है। क्योंकि यही समय फसल कटने का भी है, इसलिए इस अवसर पर किसान बहुत संतुष्ट, खुशहाल और चिंतामुक्त होते हैं। यह त्योहार सिक्खों के तीसरे गुरु अमरदास जी ने गोविंदवाल पंजाब में प्रारंभ किया था, जहां उन्होंने एक बहुत बड़ी बावली बनवाई थी। यहां हर साल बहुत बड़ा मेला लगता है।

गुरु गोविंद सिंह के जमाने में सिक्खों को मुग़लों और पहाड़ी राजाओं से मुक़ाबला करना पड़ता था। इसलिए उन्होंने "खालसा पंथ" की नींव डाली, जिसके लिए पांच चीजों ... अमृत चखना, कृपान, कड़ा, केश और कच्छा को आवश्यक बताया और उनका आदर उनके कर्तव्य में शामिल है। इस दिन नए सिक्खों और बच्चों को विशेष रूप से तैयार किया जाता है। इस दिन अमृत चख कर पंथ में शामिल किया जाता है। सबसे प्रमुख उत्सव आनंदपुर साहब

में होता है।

बैसाखी के दिन हर सिक्ख के लिए गुरुद्वारा जाना आवश्यक है। संपन्न श्रद्धालु इस दिन अमृतसर के स्वर्णमंदिर जाते हैं, जो सिक्खों का मुख्य गुरुद्वारा माना जाता है। यह सुनहरा मंदिर गुरु रामदास जी ने बनवाया था, जिस के लिए ज़मीन अकबर बादशाह ने दी थी। इस की नीव पंजाब के एक बहुत बड़े सूफी मियां पीर ने रखी थी। महाराजा संजीव सिंह ने इस के ऊपर सोने के काम के पत्र चढ़वाए थे। इसमें हरी मंदिर साहब, दरबार साहब और सराय रामदास का पवित्र और मुख्य भवन शामिल है। सिक्खों का विश्वास है कि सवर्णमंदिर के बीच बने सरोवर में नहाने से मनुष्यों के दुःख दूर हो जाते हैं। बैसाखी के दिन पंजाब में जगह-जगह मेले लगते हैं। नौजवान लोग इस अवसर पर भंगड़ा करते हैं और लड़कियां फसल से संबंधित गीत गाती हैं। सभी लोग पास के गुरुद्वारा में जाकर माथा टेकते हैं। इस दिन की खास रस्म गुरु ग्रंथ साहब एक बार में पूरा पढ़ा जाता है अर्थात अखंड पाठ होता है। गुरु ग्रंथ साहब सिक्खों का पवित्र धार्मिक ग्रंथ है, जिस में गुरु नानक देव, कबीर और दूसरे संतों के विचारों का समावेश किया गया है। सिक्ख धर्म मूर्ति-पूजा, जात-पात, छूआ-छूत को विरोध करता है। बैसाखी वाले दिन गुरुग्रंथ साहब को अति आदर के साथ जुलूस में ले जाया जाता है। जिसके आगे पांच प्यारे खुली तलवारें लेकर चलते हैं। लाखों की संख्या में श्रद्धालु इस जुलूस में शामिल होते हैं। दिल्ली के गुरुद्वारा मोती बाग में इस दिन विशेष उत्सव होता है।

बैसाखी एक धार्मिक पर्व भी है और फसल का त्योहार भी। पंजाब में यह त्योहार सभी जातियों और पंथों के लोग मिल जुल कर मनाते हैं।

लोहड़ी

लोहड़ी, पंजाब और हरियाणा में मनाया जाने वाला नववर्ष का पर्व है। यह पूस के महीने अर्थात् जनवरी में आता है। कहा जाता है कि सूरज देवता की भेजी हुई गर्मी और धूप का आभार प्रकट करने के लिए लोहड़ी मनाई जाती है। कुछ लोगों का विश्वास है कि पुराने जमाने में खूंखार दरिंदों से मनुष्यों की रक्षा के लिए आग जलाई जाती थी। आग को जीवित रखने के लिए लड़के-लड़कियां जंगल से ईंधन इकट्ठा करके जमा करते हैं। और लोहड़ी के दिन आग की व्यवस्था करते हैं। असल में "लोहड़ी" आग पूजा का दिन भी है। इसी लिए इस दिन विवाहित जोड़े आग के सामने बच्चों की ज्यादा संख्या के लिए प्रार्थना करते हैं, और मां-बाप बेटियों के लिए अच्छे वर की कामना करते हैं। इस दिन पड़ोसियों और संबंधियों को तिल के लड्डू बांटे जाते हैं। तिल के दाने आग में फेंक कर बेटों के जन्म की विशेषता भी मानी जाती है। लोहड़ी के दिन मां-बाप अपनी ब्याहता बेटियों को उपहार देते हैं।

यह प्रथा प्रसिद्ध है कि पुराने जमाने में पंजाब के एक बहादुर अब्दुल्लाह भट्टी ने एक लड़की को डाकुओं से छुड़ा कर उसे सगी बेटी की तरह पाला पोसा था और उस का ब्याह किया था। लोहड़ी के दिन दिल्ला भट्टी के प्रेम के गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में नौजवान एक दूसरे को दिल्ला भट्टी की तरह बहनों और बेटियों की रक्षा करने की सीख देते हैं।

लोहड़ी के दिन सब लोग अपने अच्छे-से अच्छे कपड़े पहनते हैं। घरों के सामने लकड़ी और उपलों का ढेर लगा कर लोहड़ी जलाई जाती है। इस दिन दाल-चावल खाए जाते हैं। और सरसों का साग भी पकाया जाता है। गन्ने के रस में चावलों की खीर भी पकाई जाती है। एक दूसरे को मिठाइयां और खीर बांटी जाती है।

सूरज ढलने पर गांव की कम उम्र लड़कियां मुखिया के घर पर जमा होती हैं। नव ब्याहताएं अच्छे कपड़े और आभूषण पहने मौजूद होती हैं। घर की बूढ़ी औरतें चूल्हे में से लकड़ी निकाल कर लोहड़ी में आग लगाती हैं और आग में गंदगी और कूड़े के भस्म होने के गीत गाती हैं। इस अवसर पर कटे हुए गन्ने लोहड़ी में डाले जाते हैं, जिससे मीठी-खुशबू हर तरफ फैल जाती है। इसके बाद लड़के लड़कियां, फुलझड़ियां, पटाखे छोड़ते हैं। लोग सवेरे तक आग की लाल रोशनी में नाचते-गाते रहते हैं। लोहड़ी की राख को पवित्र समझ कर लोग नहाने-धोने के बाद सुबह-सवेरे उठा कर घर ले जाते हैं।

ओनम

ओनम, दक्षिणी भारत का फूलों की बहार का त्योहार है। यह सावन-भादों अर्थात् अगस्त या सितंबर में आता है। इन दिनों गर्मी की फसल कट चुकी होती है। किसान खुशहाल और संतुष्ट होते हैं। एक जमाने में राक्षसों का राजा महाबली केरल पर शासन करता था। महाबली एक दयालु और बुद्धिमान राजा था, जिस को जनता बहुत चाहती थी।

लेकिन जब महाबली ने अपना राज आसमान तक फैलाने की इच्छा की तो देवता उससे नाराज हो गए। देवताओं के राजा इंद्र ने महाबली को नीचा दिखाने का एक तरीका सोचा। इस पर कार्य करने के लिए महेंद्र त्रिमूर्ति से विष्णु भगवान को चुना गया। एक ब्राह्मण लड़के वामन का भेस बदल कर विष्णु जी महाबली के दरबार में पहुंचे। महाबली ने वामन की बड़ी आवभगत की। वामन ने राजा महाबली से अपने लिए तीन कदम जमीन मांगी, जिसके लिए राजा राजी हो गया। वामन ने यह सुनते ही फैसला शुरू कर दिया और दो क़दमों से सारी धरती और आकाश नाप लिया। जब उसके लिए तीसरा क़दम रखने की जगह नहीं रही तो महाबली ने अपना वचन निभाने के लिए अपना सिर आगे कर दिया। वामन ने अपना पैर महाबली के सिर पर रख दिया। जिससे महाबली गिर गया और गिरते-गिरते पाताल में जा पड़ा। पाताल में भूलने से पहले महाबली ने विष्णु से एक वरदान मांगा था कि उसे साल में एक बार अपने
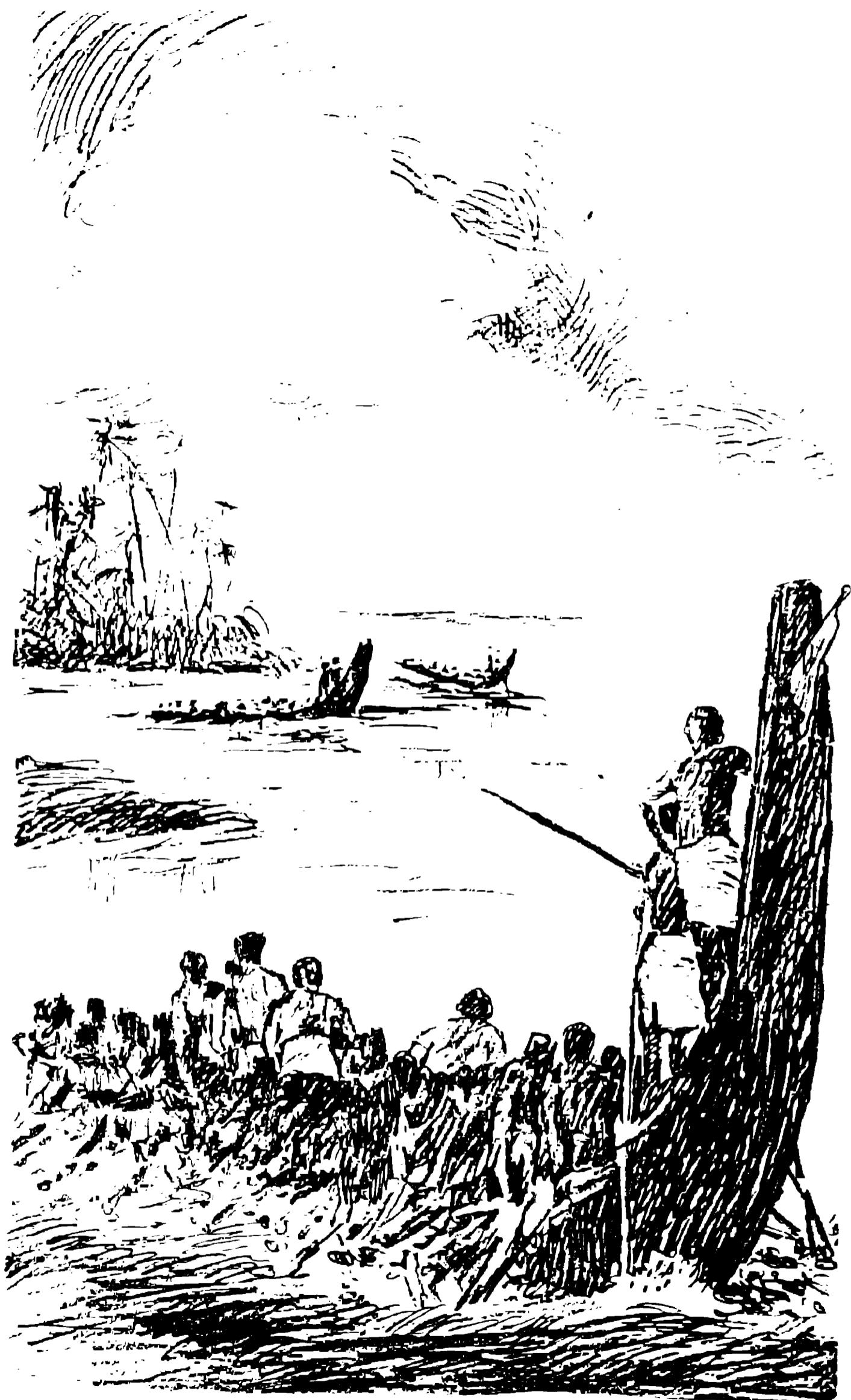
चित्र : ओनम मनाते केरलवासी लोग

लोगों से मिलने की आज्ञा दी जाए।

इसी दिन ओनम का त्योहार मनाया जाता है। इस दिन केरलवासी राजा महाबली के बलिदान को याद करते हैं। महाबली की अच्छाइयों की याद में अरब महासागर के दक्षिणी तट पर स्थित हरे भरे केरल राज्य के वासी, उस दिन महाबली के समय के शांति, खुशहाली और आपसी प्रेम को याद करके गीत गाते हैं।

महाबली जब धरती का राजा था
सारे इंसान बराबर...........थे
खतरों से आजादी जहां थी
झूठ नहीं था, सच्चाई...........थी
धोखा, चोरी तनिक नहीं थे
चैन की बंसी बजती थी

ओनम का उत्सव दस दिन तक चलता है। घरों के आंगन लीपे जाते हैं। इस दिन महाबली और विष्णु के नाम पर दो चौकोर टीले बनाए जाते हैं, जो ऊपर से नुकीले होते हैं। इन को फूलों से सजाया जाता है और पूजा की जाती है। कोचीन के पास वमन के मंदिर में ओनम के दिन बहुत भीड़ होती है। पूजा के बाद घर के बड़े, बच्चों को और मित्रों को उपहार में कपड़े देते हैं। इस दिन पकवान पकाए जाते हैं, दोस्तों, पड़ोसियों और संबंधियों का बुलावा होता है। इसके बाद नाच, खेल होते हैं। ओनम के अवसर पर नौकाओं की दौड़ देखने योग्य होती है। सांपों के रूप की सजी हुई नौकाएं नदी में दौड़ती हैं और किनारे पर खड़े हुए तमाशायी नाव खींचने वालों का साहस बढ़ाते हैं।

ओनम का त्योहार एक धर्मनिरपेक्ष और मिली जुली सभ्यता को दर्शाता है क्योंकि केरल में हर जाति और धर्म के लोग इस त्योहार को मनाते हैं।

बिहू

बिहू भारत के असम राज्य का सबसे बड़ा पर्व है। असल में यह तीन त्योहारों का मेल है जो अलग-अलग दिनों में आते हैं। 'बुहाग बिहू' अप्रैल के बीच में आती है, 'माघ बिहू' जनवरी के मध्य में और 'कटी बिहू' अक्टूबर के मध्य में आता है। यह तीनों त्योहार वसंत ऋतु, सर्दी और पतझड़ में आते हैं।

'बुहाग बिहू' या 'रंगाली बिहू' सब से मुख्य पर्व है। यह वसंत ऋतु में आती है, जब हर तरफ पेड़-पौधे, फूल, बेलें हरी भरी होती हैं, जिधर देखिए खुशहाली और शांति का मौसम दिखता है। हवा में फूलों की महक होती है और पक्षी मस्त होकर गीत गाते फिरते हैं। लोग भी पक्षियों की तरह नाचते-गाते और उछलते-कूदते हैं। असल में बुहाग असामी वर्ष का पहला महीना होता है। इस दिन लोग आनेवाले वर्ष के अमन, चैन और खुशहाली की प्रार्थना करते हैं। बुहाग बिहू खेती का त्योहार है क्योंकि इन दिनों साल की पहली वर्षा होती हैं। किसान बीज छींटने के लिए जमीन तैयार करते हैं।

त्योहार की तैयारी एक महीना पहले ही से शुरू हो जाती है। असल रस्में साल के आखिरी महीने 'छूट' के अंतिम दिन से बुहाग के कुछ दिनों तक चलती हैं। पर्व के पहले दिन को गोरू अर्थात् मवेशियों का बिहू किया जाता है। इस दिन मवेशियों को नहला धुलाकर उनके शरीरों और सींगों पर तेल मला जाता है। इनके गालों में हार और नई रस्सियां पहनाई जाती हैं। किसान लोग तालाब या

नदी पर मवेशियों को नहला कर लाते हैं और फिर शरीर पर उरद की दाल, हल्दी और नीम की पत्तियां मल कर स्नान के बाद विशेष पूजा करते हैं। दावत में चावल का चपेरा, दही और मिठाई खाई जाती है। तीसरे दिन 'गोसानी बिहू' आती है। उस दिन पूजा की जाती है। सातवें दिन औरतें जंगल से सात प्रकार के साग तोड़ कर उनकी सब्जी पकाती हैं। उसे ''सतबिहू'' कहते हैं।

बिहू के दिनों में अण्डे लड़ाने, कौड़ियां, चौसर और कबड्डी खेल खेले जाते हैं जिनमें बड़ों से अधिक बच्चे भाग लेते हैं। ढोल और स्थानीय बाजों पर प्रेम के गीत गाए जाते हैं और मर्द औरतें नाचती हैं। लड़कियां अपने प्रिय लड़कों को रूमाल का उपहार देती हैं।

हालांकि 'बिहू' देहात का त्योहार है, परन्तु आजकल शहरों में भी यह मनाया जाता है। इस दिन गाने, नाच और खेलों की प्रतियोगिताएं होती हैं। अलग-अलग समुदायों के लोग इसमें अपनी-अपनी प्रथा और रिवाज भी शामिल कर लेते हैं।

''माघ बिहू'' या ''भोगाली बिहू'' फसल कटने की खुशी में मनायी जाती है। इस दिन आग की पूजा की जाती है, शाम में मांस, मछली इत्यादि की दावत होती है। रात को नवयुवक और बच्चे अलाव जला कर 'रतजगा' करते हैं। औरतें चावलों की पकवान बनाती हैं। इस दिन भैंसों का मुकाबला भी कराया जाता है। जिसमें लोग बहुत हर्षोल्लास दिखाते हैं।

'कटी बिहू' अक्तूबर-नवम्बर में आती है, जब फसल हरी होती है और घरों में अनाज खत्म होने लगता है। इसलिए इसे 'कंगाली बिहू' भी कहते हैं। इस दिन तुलसी की पूजा की जाती है। घरों में शाम को द्वीप जलाए जाते हैं। कुछ लोग इस दिन धान के खेतों में जाकर अच्छी फसल के लिए पूजा करते हैं।

पोंगल

दक्षिणी भारत का एक मुख्य पर्व है जो तमिल महीने 'थाई' अथवा जनवरी-फरवरी में आता है। तमिलनाडु और केरल में इसको पोंगल कहते हैं। मगर कर्नाटक में इसको "सक्रांति" कहते हैं। यह त्योहार धान की फसल तैयार होने पर तीन दिनों तक मनाया जाता है। पोंगल का शाब्दिक अर्थ 'चावल की खीर' है।

पोंगल से पहले घरों की सफाई और लिपाई-पुताई की जाती है। पहला दिन 'भोगीपोंगल' कहलाता है। इस दिन घर की सफाई करके फालतू और पुरानी चीजों को जला दिया जाता है। यह दिन मौसमों के देवता 'इंद्र' का दिन होता है। इस दिन जिस तरह पेड़ पौधों पर नए पत्ते आते हैं, उसी प्रकार घरों का रंग-रूप बदल कर अर्थात् नए जीवन की शुरुआत की जाती है। घरों में चावल की लुग्दी से फर्श पर "कोलम" अर्थात रंग बिरंगे डिजाइन बनाए जाते हैं। सारी रात ढोल बजा कर बेकार सामानों का अलाव जलाया जाता है।

दूसरे दिन असली त्योहार अर्थात "सूर्य पोंगल" होती है। यह दिन सूरज देवता की पूजा के लिए अर्पित होता है। इस दिन मद्रास के कुंडास्वामी मंदिर से रथ यात्रा निकलती है। सूरज जिसकी वजह से फसल पक-पक तैयार होती है और जो संसार कों प्रकाश और जीवन देता है, उस दिन घर-घर पूजा की जाती है और चावल, दूध और गुड़ की खास खीर 'सरकोई पोंगल' पका कर बड़ी श्रद्धा से

चित्र : पोंगल के अवसर पर कोलम बनाती एक युवती

भोग लगाया जाता है। पड़ोसी, संबंधियों और मित्र उस दिन यही खीर खाते हैं।

पर्व का तीसरा दिन 'मटो पोंगल' होता है। यह मवेशियों की सेवा का दिन है। यह इस वास्तविकता का इजहार है कि किसान के जीवन में मवेशी भी मनुष्यों की तरह प्रमुख होते हैं। इसी दिन गाय, बैलों को नहला-धुलाकर उनके सींगों पर तेल की मालिश की जाती है और रंगा जाता है। इस दिन मवेशियों की प्रतियोगिता होती है जिन्हें 'मंजी वरातव' कहते हैं। मवेशियों की गर्दनों में खजूर के पत्तों के हार डालकर उन्हें खुला छोड़ दिया जाता है। ताकतवर और नुकीले सींगों में पैसों की थैलियां बांधी जाती हैं, जिन्हें वीर नवयुवक बैलों पर चढ़ कर उतार लाते हैं। ये थैलियां वीरता का पुरस्कार होती हैं। परंतु अधिकतर लोग बहादुरी के इस प्रदर्शन के दौरान जख्मी भी हो जाते हैं। शाम को मंदिरों में पूजा होती है। फिर बैलगाड़ियों की दौड़ होती है, जिसमें कुछ लोग भाग लेते हैं और बाकी तमाशा देखते हैं। इस दिन पतंगबाजी और शिकार भी होता है।

पोंगल फसल कट कर घर में आने से पैदा होने वाली खुशहाली, चिन्ता से मुक्ति होने और आशाओं का पर्व है।

ईद-मिलाद-उन-नबी

इस्लाम के संदेशवाहक हजरत मुहम्मद का जन्म रबी औवल की 12 तारीख को 571 ई. में हुआ था। इस दिन को "ईद मिलाद-उन-नबी" या "बारह-बफात" भी कहते हैं। क्योंकि उनकी मृत्यु भी इसी तिथि को हुई थी। ईद का शाब्दिक अर्थ प्रसन्नता होता है। हजरत मुहम्मद (सल्लाहो अलैहेव सल्लम) अरब के नगर मक्का में "बनुहाशिम" के कुरैश वंश में पैदा हुए थे। आप के पिताश्री का नाम अब्दुल्लाह और माताजी का नाम आमना था। अरब का यह काल निरक्षरता व बेरहमी का था। यहां औरतों को जानवरों की तरह रखा जाता था, यहां तक कि लड़की के जन्म होने पर उस का गला घोंट कर मार दिया जाता था। खानदानी झगड़े, शराबनोशी, कत्ल-व-ग़ारत आम बातें थीं। हजरत मुहम्मद के पिता का निधन, उनके जन्म से पहले ही हो गया था, इसलिए आप का पालन-पोषण दादा अब्दुल मुतल्लिब के पास हुआ। पांव-पांव चलने लगे तो भाइयों के साथ बकरियां चराने जाते। कुछ बड़े हुए तो माताजी और दादा का साया भी सिर से उठ गया। आठ वर्ष की आयु से अपने चाचा अबुतालिब के पास रहने लगे।

हजरत मुहम्मद (सल्लाहो अलैहेव सल्लम) बचपन ही से शिष्ट एवं शांतभाव के थे। पहले पहले मजदूरी पर बकरियां चरायीं फिर व्यवसाय शुरू कर दिया। ईमानदार इस प्रकार थे कि लोग उन्हें "सादिक" अर्थात सच्चा और "अमीन" अर्थात् अमानतवाला कहने

लगे। पच्चीस साल की आयु में अपने से बड़ी उम्र को विधवा हजरत खदीज़ा से ब्याह कर के उन्होंने एक मिसाल कायम की। क्योंकि उस काल में औरत को अच्छी नजर से देखा नहीं जाता था।

हजरत मुहम्मद (सल्लाहो अलैहेव सल्लम) अपना ध्यान खुदा की तरफ लगाते और अधिकतर "हेरा" नामक पहाड़ के गुफा में चले जाते। चालीस साल की आयु में खुदा की तरफ से हजरत जिबरईल संदेश लाए कि आप नबी (खुदा का संदेशवाहक) बना दिए गए। यह बहुत बड़ी जिम्मेवारी थी। हजरत मुहम्मद मिसाली जीवन व्यतीत करते थे। पुण्य करना, कमजोरों के काम आना और व्यक्तिगत दुःख-दर्द को खुशी से बर्दाश्त करना उनकी रुचि थी। हजरत ने इस्लाम का संदेश लोगों में फैलाना शुरू किया। उनके चरित्र के प्रभाव से इस्लाम हर ओर फैलता चला गया। इस्लाम में सभी मनुष्यों को बराबरी स्थान प्राप्त है। इस्लाम के बराबरी के संदेश ने भी लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया।

लेकिन जब हजरत मुहम्मद की ख्याति ज्यादा फैलने लगी तो उनके दुश्मनों ने अपनी शक्ति कम हो जाने के भय से उनको तरह-तरह से सताना शुरू किया। जब स्थिति बर्दाश्त से बाहर हो गई तो हजरत मुहम्मद (सल्लाहो अलैहेव सल्लम) मक्का से हिजरत करके मदीना चले गए। उस समय वे 52 वर्ष के थे। उनकी हिजरत से इस्लामी वर्ष अर्थात 'हिजरी' शुरू होता है। मदीना जाकर उन्होंने वहां मस्जिद बनायी। जब वहां भी लोग उनकी सच्चाई, अमन पसंद और जुल्म का विरोध करने की आदत से उनके दुश्मन बन गए तो मजबूरी में उनको कई बार युद्ध भी करना पड़ा।

हिजरत के दस वर्ष के बाद आपने मक्का जाकर आखिरी हज किया और "अरफात" के मैदान में एक यादगार नसीहत दी, जिस

में मुसलमानों को कमज़ोरों पर जुल्म न करने, किसी का हक न मारने, औरतों बच्चों और नौकरों के साथ नरमी बरतने, हलाल कमाई खाने और रोज़ाना नमाज, हज और ज़कात (यानी धन का चालीसवां भाग जो सालभर के बाद खुदा की राह में दिया जाए) देने की हिदायत की।

मृत्यु के समय आप की आयु तिरसठ वर्ष थी और आप खुदा के अंतिम संदेशवाहक थे। आप ने मुसलमानों को सादगी, सच्चाई और ईमानदारी का पाठ दिया। ईद-मिलादुन-नबी से पहले की रात में एक समय ऐसा आता है कि मुंह मांगी प्रार्थना कुबुल हो जाती है। हजरत मुहम्मद के जीवन के बारे में सभाएं होती हैं। इनको "जल्स-ए-सीरतुन्नबी" कहते हैं। बारह वफात के दिन लोग कब्रिस्तान जाकर अपने प्रिय और बुजुर्गों की कब्रों पर फातिहा पढ़ते हैं और उनकी आत्माओं की शांति की प्रार्थना करते हैं। इस दिन पड़ोसियों, संबंधियों में शीरीनी बांटी जाती हैं और गरीबों को खाना खिलाया जाता है।

उर्स हजरत निजामुद्दीन

भारत शुरू ही से सूफी, संतों, ऋषियों और दरवेशों का देश रहा है। इन साधु संतों ने धर्म के कट्टरपन से हट कर मानवता और भाईचारे और हर संप्रदाय को एक दूसरे के साथ अमन से जिंदा रहने का प्रचार किया। ख्वाजा हजरत निजामुद्दीन भारत के एक ऐसे ही प्रसिद्ध सूफी थे जिन्होंने बादशाहों के बदले गरीबों को सदा पसंद किया। और दुनिया के ऐश और आराम त्याग कर सादगी से जीवन व्यतीत किया।

ख्वाजा निजामुद्दीन का पैदाइशी नाम सैय्यद मोहम्मद था। आपका हजरत मुहम्मद (सल्लाहो अलैहेव सल्लम) के वंश से संबंध था। आप के पिता, नाना, दादा सभी फक़ीर थे। आप का जन्म 1238 ई. में गुलाम वंश के शासन काल में बदायूं में हुआ था। आप के वंशज अरब से बुख़ारा होते हुए भारत में आए थे। दिल्ली नगर को बाइस ख्वाजाओं का चौखट कहा जाता है। आप को "सुल्तानुल औलिया" अर्थात 'वलियों का राजा' कहा जाता है। इसलिए कुछ लोग आप की दरगाह के क्षेत्र को सुल्तानजी भी कहते हैं, वैसे इस बस्ती को ग्यासुद्दीन तुग़लक ने बसाया था, इसलिए उसका पुराना नाम "ग्यासपुरा" है।

ख्वाजा निजामुद्दीन, बादशाह नसीरूद्दीन के काल में ज्ञान की प्यास बुझाने के लिए दिल्ली आ गए थे। आप अधिकतर पैबंद लगे हुए कपड़े पहनते थे और बारह महीने रोज़े रखते थे। एक बार उनकी

बहन ने अपने पति की पगड़ी में से कपड़ा काट कर ख़्वाजा निजामुद्दीन के कपड़ों में पैबंद लगाया था। आप अपनी खानक़ाह में हर छोटे-बड़े, हिन्दू-मुसलमान, गरीब, अमीर सभी से हर समय मिलते थे। आप बदनाम और बुरे लोगों को भी अपना मुरीद कर लिया करते थे। इस आशा पर कि शायद उनके उपदेश से बुराई करने वाले अच्छे रास्ते पर आ जाए। आप के खानक़ाह में हर समय लंगर जारी रहता था। चूंकि हजरत सामान एकत्र करने के खिलाफ थे, इसलिए खानकाह में मुरीदों का दिया हुआ भी मौजूद होता, शुक्रवार के दिन सब बांट दिया करते थे। आप का खानकाह हुमायूं के मक़बरे के पास चिल्ला के स्थान पर स्थित है। ख्वाजा निजामुद्दीन देश के जनता के बीच इतने लोकप्रिय हो गए थे कि उनसे अधिकतर बादशाह भयभीत रहते थे। आप घमंडी बादशाहों से मिलना पसंद न करते थे और न उनसे किसी प्रकार की सहायता लेना चाहते थे। एक बार बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने ख्वाजा निजामुद्दीन से मिलने का प्रयास किया, लेकिन आपने मना कर दिया। उस जमाने के प्रसिद्ध सूफी कवि अमीर खुसरो, ख्वाजा के प्रिय शिष्य थे। अमीर खुसरो ने राग अविष्कार किए थे।

जब ख्वाजा निजामुद्दीन के सगे भांजे का निधन हुआ तो उनको बहुत सदमा पहुंचा। यहां तक कि छः महीने तक खानक़ाह (फकीरों की रहने की जगह) में बंद होकर इबादत करते रहे। अमीर खुसरो तक से मिलना छोड़ दिया। एक दिन हिंदू लोग कालका जी मंदिर, सरसों के फूल चढ़ाने जा रहे थे। तो हजरत अमीर खुसरो ने सरसों के फूल उठा लिए, पीले कपड़े पहने और ढोलक लेकर खानक़ाह के दरवाजे पर राग वसंती का गीत गाने लगे। ख्वाज़ा ने पूछा "क्या बात है?" जवाब दिया कि "आज के दिन हिंदू अपने पिया को

मनाने जा रहे हैं, मैं भी अपने प्यारे को मनाने आया हूं।" ख्वाजा यह सुन कर 'मुस्करा' पड़े। उस दिन से दिल्ली के मुसलमान भी वसंत मनाने लगे। पहले खानक़ाह में वसंत का मेला लगता था, फिर सारे नगर पर वसंत छा जाती थी।

आप 1324 ई. में रबी औव्वल महीने की सत्तरह तारीख को इस दुनिया से गुजर गए। साल इसी तारीख को आप का उर्स मनाया जाता है। आप को कव्वाली सुनने का बहुत शौक था, इसलिए इस अवसर पर उर्दू, फारसी, पंजाबी और अवधी भाषा की कव्वालियां खूब होती हैं। आप सूफियों के चिश्तीया पंथ से संबंध रखते थे। आप के मजार पर हिन्दू-मुसलमान श्रद्धालुओं की भीड़ लगी रहती है और लोग दूसरे देशों से भी मिन्नत मानने यहां आते हैं। आप की दरगाह से कुछ दूरी पर एक बावली है, जिसमें खानकाह तक सुरंग थी। यहीं पर यारों का चबूतरा है, जहां ख्वाजा के संबंधियों के मजार हैं।

उर्स के दिनों में पांच रोज तक कुल (पीरों के जल्से में पढ़ा जाने वाला फातिहा) होता है और कव्वालियां होती हैं, हर समय लंगर लगा रहता है। सत्रहवीं तारीख को सुबह "चिल्ल-ए-खाबक़ाह" (खानकाह का वह स्थान जहां-वहां बुजुर्ग ने चालीस दिनों तक वज़ीफ़ा पढ़ा हो) में फातेहा होती है और रात को रौजे यानी गुंबद वाले मकबरे में फातेहा होती है। श्रद्धालु जो सामान लाते हैं सब बांट दिया जाता हैं। दरगाह की तरफ से शक्कर का तबर्रुक (फातिहा पढ़ी मिठाइयां) बांटा जाता है।

ख्वाजा निजामुद्दीन ने मानवता का पाठ दिया था, इसीलिए आज भी लाखों हिन्दू-मुसलमान उनके अनुयायी हैं।

फूलवालों की सैर

अगर भारत की मिली जुली गंगा-जमुना सभ्यता, हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे के आपसी मेलजोल को किसी त्योहार के रूप में देखना हो तो दिल्ली के मेले "फूल वालों की सैर" का नाम बिना संकोच के लिया जा सकता है। भारत के अधिकतर पर्व धर्म से संबंधित हैं परंतु यह उन त्योहारों में से है जो पुष्प संस्कृति को दर्शाता है।

फूल वालों की सैर की शुरुआत आज से लगभग दो सौ साल पहले मुग़ल शासक अकबर शाह के काल में हुई थी। यह वह समय था जब अंग्रेज भारत में नाजायज दखल देने लगे थे। राजकुमार मिर्जा जहांगीर ने एक दिन अंग्रेज रेजीडेंट पर गोली चला दी, सजा के तौर पर जहांगीर को इलाहाबाद क़ैदखाने में डाल दिया गया। कमजोर बादशाह कुछ भी न कर सके, जब मिर्ज़ा जहांगीर छूट कर दिल्ली आए तो उनकी माता ने बड़ी धूम-धाम से मेहर-ए-वली (मैंहरोली) में ख्वाजा बख्तियार काफी के मज़ार पर फूलों का चपरखट और चादर चढ़ाई। इस अवसर पर दिल्ली के हिंदू-मुस्लिम सभी ने भव्य उत्सव मनाया। फूलवालों ने जो मूसहरी बनाई, उस में फूलों का एक पंखा भी लटका दिया था।

बादशाह को यह मेला बहुत पसंद आया और तभी से हर वर्ष भादों के शुरू में मेहर-ए-वली (मैंहरोली) की दरगाह और योगमाया पर फूलों के पंखे चढ़ाए जाने लगे। बहादुर शाह जफर के समय में इस मेले को काफी उन्नति मिली। भादों के महीने में, जब हर तरफ जल थल नजर आता है, बादशाह और शहजादे, शहजादियां

कई दिन तक मेहर-ए-वली में डेरे डालते थे। हिंदू-मुसलमान, अमीर-गरीब सभी दिल्ली वाले, खाते-पीते, पतंगबाजी करते, नौकाएं देखते, मुर्गे और तीतर-बटेर लड़ाते थे। राजकुमार एवं राजकुमारियां "शम्सी तालाब" के आस-पास सैर करते, झूले झूलते और पकवान खाते थे।

महीने की चौदहवीं रात को मग़रीब (सूरज डूबने के बाद की न ाज) के बाद फूलों का बड़ा सुंदर पंखा योगमाया मंदिर के लिए उठता था। आगे-आगे दिल्ली के फूल बेचने वाले, शहनाई-वादक, पहलवान और करतब दिखाने वाले चलते। आधी रात के आस-पास पंखा योगमाया के मंदिर पर हिन्दू-मुसलमान मिलकर चढ़ाते और चांदनी रात में प्रसाद लेकर वापस आते थे। अगले दिन इसी धूम-धाम से ख्वाजा की दरगाह पर पंखा चढ़ाया जाता था। बादशाह दोनों दिन पंखे के साथ जाते थे। 1857 के बाद दिल्ली बर्बाद हुई, अंग्रेजों की गुलामी का दौर आया, बहादुर शाह जफर को रंगून में आजीवन कैद कर दिया गया। मेला घटते-घटते 1942 में बिल्कुल बंद हो गया।

स्वतंत्रता के बाद महान नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू ने हिंदू-मुस्लिम भाईचारे के इस त्योहार को दुबारा शुरू कराया। शाही काल में यह मेला वर्षा-ऋतु में लगता था, अब यह अक्तूबर के महीने में लगता है। इन दिनों मौसम मनभावन होता है और हर ओर हरियाली छायी होती है। इस दिन स्कूल और दफ्तर बंद रहते हैं और मेले की व्यवस्था दिल्ली सरकार की तरफ से होती है। हालांकि अब "फूलवालों की सैर" में पहले जैसा हर्षोल्लास नहीं रहा, परंतु सरकार ने हिंदू-मुस्लिम भाईचारे को बढ़ावा देने के इस अवसर को जीवित रख कर बड़ा कार्य किया है। हिंदू, मुसलमान और सिक्ख बड़ी संख्या में इस मेले में भाग लेते हैं।

नो रोज़ा

ईदुलफितर

ईद-उल-फितर मुसलमानों का सबसे बड़ा पर्व है। असल में यह रमज़ान के महीने के समाप्त होने की खुशी में मनाया जाता है। मुस्लिम महीने चांद के कैलेंडर से चलते हैं, इस कारण से मुस्लिम त्योहार अलग-अलग मौसमों में आते रहते हैं। रमज़ान का महीना, इबादत, नफ्शकुशी (सांसारिक इच्छाओं का दमन) और परहेज़गारी का महीना होता है। गर्मी हो या सर्दी सूरज निकलने से पहले सेहरी खा ली जाती है। सेहरी में आमतौर पर दूध, सेवइयां और दूसरी हल्की-फुल्की चीजें खायी जाती हैं। सुबह की अजान होने से दिन डूबने तक खाना यहां तक कि पानी, सिगरेट, बीड़ी पीना तक मना होता है। रोज़ादार के लिए दुनिया की सारी जिम्मेवारिया पूरी करना भी आवश्यक हैं क्योंकि इस्लाम तर्के-दुनिया (सांसारिक मोह से अलग होना) की शिक्षा नहीं देता। गर्मियों के रोज़े प्यास के कारण बहुत सख्त महसूस होते हैं। रोज़ा मनुष्य को उन गरीबों का दुःख-दर्द महसूस करना सिखाता है, जिनको दो वख्त की रोटी नहीं मिल पाती। इस महीने में संपन्न मुसलमानों पर अपनी जायदाद, नगदी और जेवर इत्यादि के मूल्य का ढाई प्रतिशत भाग ज़कात के रूप में गरीबों में देना भी फर्ज है।

रमज़ान का महीना बड़ी धूम-धाम से गुजरता है। सेहरी के समय लोग अधिकतर खुदा-रसूल की शान में मुनाजात और नातें गाते हुए, गली-गली रोज़ादारों को जगाते फिरते हैं। रोज़ा खोलने अर्थात् इफ्तार

कई
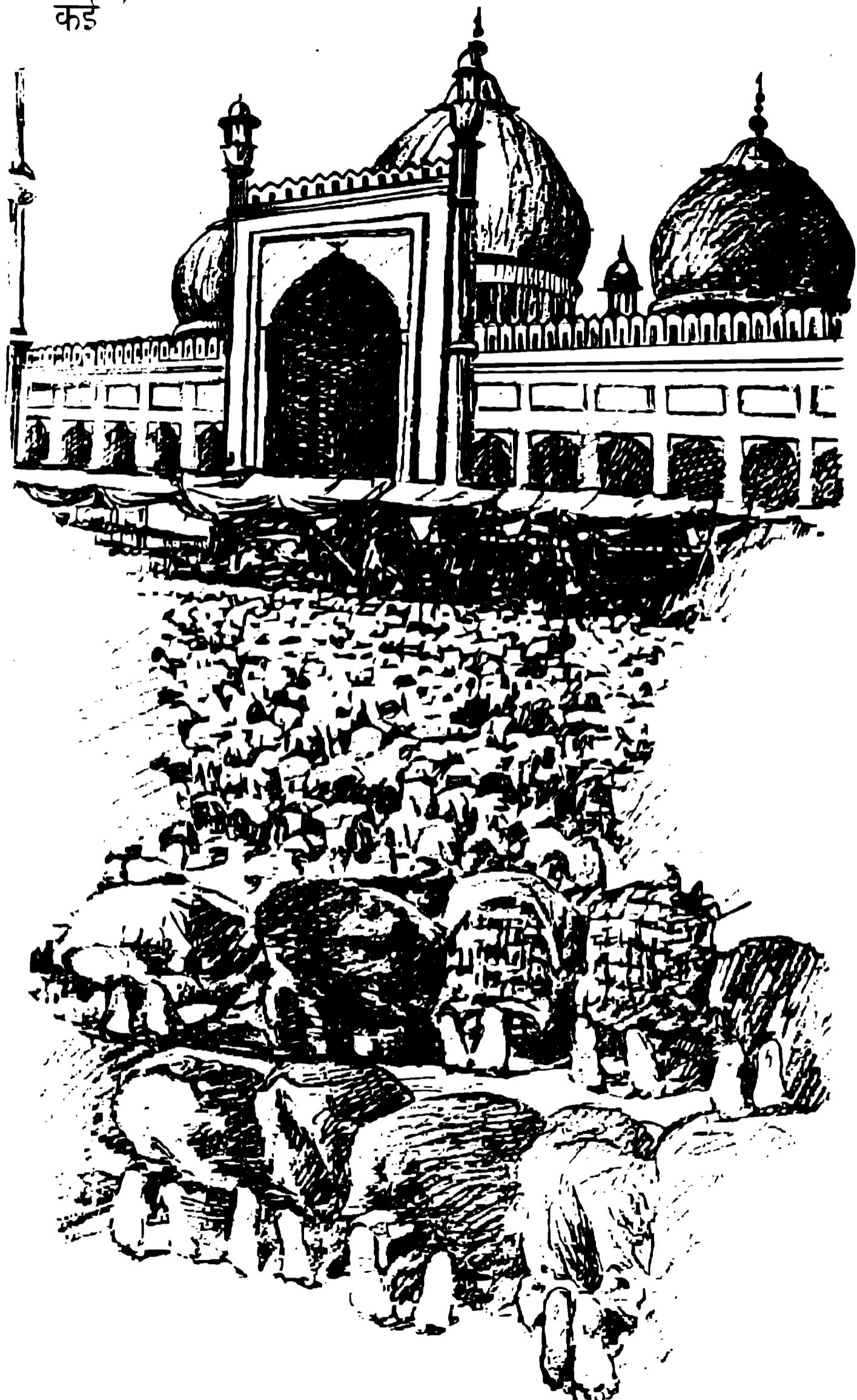
चित्र : ईद-उल-फितर के मौके पर नमाज पढ़ते लोग

नजारा देखने योग्य होता है। रोज़ादार और यहां तक कि जो रोज़ा नहीं रहते वह भी फलों, पकौड़ों, चाट और खजूर इत्यादि की इफ्तारी पूरी खुशी से तैयार करते हैं। और मुहल्ले वालों, गरीबों को और मस्जिदों में भिजवाते हैं। दिल्ली की मस्जिदों में इफ्तार समय होते ही प्रकाश किया जाता है और गोले दागे जाते हैं। सायरन भी बजते हैं। सभी छोटे-बड़ों का एक साथ रोज़ा खोलना बड़ा भला लगता है। इफ्तार के बाद मग़रीब की नमाज पढ़ी जाती है। फिर रोज़ादार आराम करके रात का खाना खाते हैं। इन दिनों रात की विशेष नमाज़ भी पढ़ी जाती है, जिसे तरावीह कहते हैं। इसके दौरान हाफिज लोग कुरआन सुनाते हैं। मस्जिद में जब कुरआन खत्म होती है तो मिठाई बांटी जाती है और हाफिज साहब को कपड़े और उपहार दिए जाते हैं।

रमज़ान का महीना खत्म होने पर ईद का चांद दिखाई देता है। बच्चे विशेष रूप से छतों पर चढ़ कर चांद देखने के लिए आसमान पर नज़र रखते हैं। अगर बादल वर्षा के कारण एक शहर में चांद दिखाई नहीं देता तो दूसरे शहरों के आलिमों की गवाही पर भी चांद का एलान कर दिया जाता है।

चांद का एलान होते ही हर ओर हलचल मच जाती है। औरतें और लड़कियां अपने जोड़े, चूडियां, मेंहदी और आभूषण सही करने लगती हैं। बच्चे नए कपड़े, जूते, टोपी, रूमाल मिलने की खुशी में मगन होते हैं। चांद रात को सारे बाजार रात भर खुले रहते हैं।

सुबह-सवेरे उठकर मर्द और बच्चे सिवाइयां, मिठाई और फल खा कर शहर से बाहर ईदगा[illegible] [illegible] [illegible]स्जिदों में ईद की विशेष नमाज़ पढ़ने जाते हैं। नमाज़ के बाद लोग गले मिल कर पिछले

गिले-शिकवे दूर करते हैं। बच्चे बड़ों से अधिक पैसे 'ईदी' के नाम पर वसूल करते हैं। संबंधी और मित्र एक दूसरे के घर ईद मिलने जाते हैं। हर ओर 'ईद-मुबारक' का शोर, दावतों की भरमार और मिठाइयां ही मिठाइयां होती हैं। और दो तीन दिनों तक दावतों और सैर-सपाटों का वातावरण रहता है।

ईद-उल-जुहा

बकरीद या ईद-उल-जुहा, ईदुलफितर के दो महीने दस दिन बाद आती है। यह ईद चूंकि महीने की दस तारीख को मनायी जाती है, इसलिए इसका निर्णय दस दिन पूर्व ही चांद देख कर होता है। यह भी कभी गर्मी और कभी सर्दी के मौसम में आती है। खुदा के संदेशवाहक हजरत इब्राहिम को अपने छोटे बेटे से बहुत प्रेम था। शैतान ने खुदा से हजरत इब्राहिम की परीक्षा लेने के लिए कहा। खुदा ने हजरत इब्राहिम से सपने में कहा कि अगर तुम मुझ से सच्ची श्रद्धा रखते हो तो मेरे नाम पर अपने बेटे को कुर्बान कर दो। हजरत इब्राहिम ने खुदा का हुक्म तुरंत मान लिया और हजरत इसमाईल को जबह (कुर्बान) करने के लिए उसके गले पर छुरी रख दी। छुरी चलाना ही चाहते थे कि खुदा की आज्ञा से हजरत इसमाईल की जगह एक दुम्बा (बकरा) आ गया। इसी कुर्बानी की याद में बक़रीद मनायी जाती है।

इस अवसर पर संपन्न मुसलमान हज का फर्ज अदा करने मक्का शरीफ जाते हैं। हाजी लोग मक्का में ही जानवर की कुर्बानी देते हैं। हज पर न जाने वाले घरों पर ही बकरे, भेंड, ऊंट या भैंस इत्यादि को खुदा की राह में कुर्बान करते हैं। इस दिन लोग सुबह उठकर ईदगाह या बड़ी मस्जिद में विशेष नमाज़ अदा करने जाते हैं। वापस आकर जानवरों को जबह (कुर्बान) करते हैं। कुर्बानी केवल संपन्न मुसलमानों के लिए फर्ज है। कुर्बानी का एक तिहाई मांस

गरीबों में बांट दिया जाता है। एक तिहाई संबंधियों और मित्रों को दिया जाता है। बाक़ी घर में रखा जाता है।

हालांकि बक़रीद को इदुलफितर की तरह बड़ा त्योहार नहीं समझा जाता है परंतु अधिकतर जगह यह ईद भी तीन दिन तक मनायी जाती है, औरतें, बच्चे, मर्द नए कपड़े पहनते हैं। छोटों को 'ईदी' दी जाती है। मित्रों को फल, मिठाइयां खिलाई जाती हैं। कुर्बानी के जानवर खरीदना और उनकी देख भाल करना, उन्हें दाना-चारा खिलाना घर के सभी लोगों की जिम्मेवारी होती है। इसी अवसर पर शहरों में गांव से लाए जानवरों के बाजार लगते हैं जहां बड़ी भीड़-भाड़ और सौदेबाजी होती है। धनवान कई-कई जानवरों की कुर्बानी करा के गरीबों में मांस बांटते हैं और संबंधियों, मित्रों को निमंत्रण दिया जाता है। कबाब, कुरमा, बिरयानी, भूना गोश्त दिल खोलकर खाया जाता है। अरब देशों से कुर्बानी का मांस दूसरे देशों में बांटने के लिए भेजा जाता है।

मुहर्रम

मुहर्रम के महीने से इस्लामी साल की शुरुआत होती है। मुहर्रम त्योहार नहीं है बल्कि कर्बला में शहीद होने वालों का शोक है जो आमतौर पर महीने के पहली तारीख से दस तारीख तक मनाया जाता है।

हजरत मुहम्मद के इस दुनिया से गुजरने के बाद मुसलमानों के व्यवस्थापक "खलीफा" कहलाते थे। खलीफा हजरत अली के बाद मतभेद पैदा हो गया। अरब के दो प्रसिद्ध खानदान बनू-हाशिम और बनु-उम्मैया एक दूसरे के विरोधी हो गए। हज़रत मोहम्मद और उनका खानदान बनु-हाशिमी थे जबकि अमीर मुआविया बनु-उम्मैया खानदान से संबंध रखते थे। इस प्रकार कुछ लोगों ने हज़रत मोहम्मद के नाती (नवासा) और हज़रत अली के बड़े पुत्र हज़रत इमाम हुसैन को खलीफा माना तो कुछ लोगों ने अमीर मुआविया को खलीफा स्वीकार कर लिया। हज़रत इमाम हुसैन साधारण-प्रिय थे जबकि अमीर मुआविया के अंदर ठाट-बाट की प्रवृत्ति थी। हज़रत इमाम हुसैन को ज़हर दिए जाने से उनकी मृत्यु होने के बाद हज़रत अली और हज़रत मोहम्मद की बेटी हज़रत फातिमा के छोटे बेटे इमाम हुसैन को "खिलाफत" का हक़दार समझा मगर अमीर मआविया अपने जाहिरदार और ऐश-पसंद बेटे यज़ीद को खलीफा बनवाना चाहता था। हज़रत इमाम हुसैन चूंकि रसूल-ए-खुदा के बहुत नज़दीकी उत्तराधिकारी थे, और स्वभावतः नेक व सादा थे इसलिए

मज़ीद उनको अपनी गद्दी के लिए खतरनाक समझता था। इसलिए इमाम हुसैन को यहां तक सताया कि पहले वह मदीना छोड़कर मक्का की तरफ जाने लगे। मगर स्थिति अपने से विपरीत देख कर कर्बला पहुंच गए। मुहर्रम की पहली तारीख को कर्बला के पास "फरात" दरिया के किनारे यज़ीद का फौजियों ने इमाम हुसैन और उन्के साथियों और सगे संबंधियों का पानी बंद कर दिया। एक त ह हज़ारों की संख्या में अत्याचारी यज़ीद की फौज थी तो दूसरी तरफ महान चरित्र और सूफी स्वभाव जवान, बच्चे, औरतें, बच्चियां थीं जो भूख, प्यास और गर्मी से तड़प रहे थे। न्याय और अन्याय के इस मुक़ाबले में सच्चाई की ज़ाहिरी तौर पर हार हुई। हज़रत इमाम हुसैन और उनके मित्र ज़ालिम से लड़ते-लड़ते भूखे प्यासे शहीद हुए। इसी शोक में मुहर्रम या आशुरा मनाया जाता है। यह घटना 680 ई. में मुहर्रम की दस तारीख को घटी।

लखनऊ के मुहर्रम सारी दुनिया में प्रसिद्ध है। सुन्नी संप्रदाय के मुसलमान उतने सुनियोजित ढंग से मुहर्रम नहीं मनाते जितने शिया लोग मनाते हैं। इस अवसर पर अलग अलग मुहल्लों और जाति के लोग ताज़िया बनाते हैं। कहा जाता है कि भारत में ताज़िया बनाने की प्रथा तैमूर लंग ने प्रारंभ की थी। असल में हज़रत इमाम हुसैन के रोज़े यानी गुंबद वाले मकबरे में का नक्ल होता है। ताज़िया लकड़ी, बांस, रंगीन कागज, शीशों और कपड़ों इत्यादि से बनाए जाते हैं। ताज़िया और पंजे के रूप में झंडे जुलूस निकाले जाते हैं। मुहर्रम के जुलूसों में पहलवान, कर्बला की याद ताजा करते हुए लाठी इत्यादी के कमाल दिखाते हैं। जुलूस में हज़रत इमाम हुसैन के घोड़े की तरह एक सफेद घोड़ा होता है जिसे "दुलदुल" कहते हैं।

उन दिनों लोग इमाम-बाड़ों में जमा होते हैं जहां कर्बला की घटनाओं की मजलिसे यानी कविताएं पढ़ी जाती हैं। मुहल्लों में कर्बला के शहीदों के मर्सिया यानी शहादत का लेखा भी पढ़े जाते हैं और उनके ग़म में मातम भी किया जाता है। लखनऊ के कवि "मीर अनीस" और "मिर्जा दबीर" ने कर्बला के शहीदों की बहादुरी की प्रशंसा, उनकी तलवारों की प्रशंसा और गर्मी-प्यास की शिद्दत का वर्णन शायरी में बड़ी महारत के साथ किया है, कर्बला के शहीदों की याद में कुछ लोग आग पर चलकर मातम करते हैं कुछ जंजीरों से अपने शरीर को जख्मी कर लेते हैं।

मुहर्रम की आठ और नौ तारीख को इमामबाड़ी को सजाया जाता है। लखनऊ से नवाब आसिफ-उद-दौला का इमामबाड़ा बहुत प्रसिद्ध है। इन दिनों लोग साधारण रहते हैं हंसी मज़ाक से बचते हैं और अधिकतर लोग काला मातमी कपड़ा पहनते हैं।

मुहर्रम की 14 तारीख को सुन्नी लोग अपने ताज़िया कर्बला में ले जाकर दफ़न कर देते हैं। कुछ शिया लोग "चहल्लुम" अर्थात् चालीसवें दिन तक शोक मनाते हैं और उसी दिन ताज़िया दफ़न करते हैं। दिल्ली में कर्बला सफदरजंग के पास है। कुछ लोग अपने ताज़िया और झंडे वापस लाकर अगले वर्ष के लिए रख देते हैं। मुहर्रम जुल्म के विरोध लड़ने वाले नेक और भले मनुष्य की शहादत का शोक मनाने और जालिम के खिलाफ आवाज़ उठाने का दिन है।

क्रिसमस

क्रिसमस या बड़ा दिन हज़रत ईसा का जन्म दिवस है, जो 25 दिसंबर को सारे ईसाइयों के द्वारा मनाया जाता है। भारत में ईसाई धर्म के अनुयायी केरल, गोआ, दिल्ली और उत्तरी-पूर्वी राज्यों में काफी बड़ी संख्या में रहते हैं। हजरत ईसा से पूर्व रोमन साम्राज्य में सूरज देवता की पूजा होती थी। ईसवी वर्ष हज़रत ईसा के जन्म से शुरू होता है।

अरब में फिलिस्तीन पैगम्बरों और धर्म प्रचारकों का क्षेत्र रहा है। इसी फिलिस्तीन के नगर येरोशलम के पास "बैतुललेहम" के एक अस्तबल में माता मरियम ने ईसा को जन्म दिया। इनके जन्म से पहले अरब और रोम में कट्टरपन और अंधविश्वास का बोलबाला था। हजरत ईसा बचपन ही से बुद्धिमान-दयालु और खुले दिमाग के मनुष्य थे। अपने विनम्रता स्वभाव और यहूदी पुरोहितों के कट्टरपन का विरोध करने के कारण हज़ारों लोग इनके पीछे-पीछे चलने लगे थे। उन्होंने गुलामों और गरीबों की सहायता करके समाज में बराबरी का संदेश दिया। उनका कथन था कि "केवल निर्धनों और दुःखियारों को ही स्वर्ग मिलेगा। ईश्वर ने हज़रत ईसा को अंधों को आंखों की रोशनी देने, कोढ़ियों और बीमारों को स्वस्थ करने और मुर्दों को जीवित करने की शक्ति दी थी। इसीलिए लोग उन्हें "मसीहा" कहते हैं।

हज़रत ईसा की बढ़ती हुई लोकप्रियता से उस क्षेत्र का ज़ालिम

चित्र : सांता क्लॉज उपहारों के साथ

राजा और पुरोहित परेशान हो गए। उन लोगों ने ईसा मसीह के विपरीत प्रचार करना शुरू कर दिया कि वह स्वयं को खुदा का बेटा कहते हैं। उनके हवारीयों (ईसरा मसीह के शिष्य) ने उनके साथ दगा की, "गुड फ्राइडे" के दिन उनके शरीर में कीले ठोंक कर उन्हें सूली पर लटका दिया गया। उसी सूली को आज क्रूस के रूप में पूजा की जाती है। अंतिम समय में भी ईसा मसीह ने अपने हत्यारों के लिए प्रार्थना करते हुए कहा था "ऐ ईश्वर इन्हें माफ कर देना। यह नहीं जानते कि यह क्या कर रहे हैं।" कहा जाता है कि तीन दिन बाद ईस्टर के दिन हज़रत ईसा दुबारा जीवित हो गए थे।

क्रिसमस के दिन चर्च और घरों में रोशनी की जाती है। रात को लोग मिलकर हज़रत ईसा की महानता और श्रद्धा के गीत गाते हैं। प्रातःकाल गिरजाघरों में विशेष पूजा की जाती है। संपन्न लोग गरीबों को उपहार देते हैं। दिन में चर्च के बाहर क्रिसमस मेला लगता है। बच्चों के लिए छोले, खाने की चीजें, मिठाइयां, केक और चावल इत्यादि बिकते हैं।

क्रिसमस की रात्रि को सांता क्लॉज अपनी सफेद दाढ़ी और उपहारों से भरे थैले लिए गाड़ी पर सवार घर-घर बच्चों के लिए खिलौने मिठाइयां बांटते हैं। कहा जाता है कि यह प्रथा प्राचीन तुर्की के संत निकोलस की याद में चली आ रही है। जो रात को घूमकर गरीबों की सहायता करता था। क्रिसमस की रात को बच्चे क्लाज का बेचैनी से इंतज़ार करते हैं। इस दिन घरों में क्रिसमस का वृक्ष भी रोशनियों से सजाया जाता है। पुराने जमाने के यूरोप में बच्चों की बली दी जाती थी। एक बार ईसाई संत ने देखा कि एक मासूम बच्चे को बलूत के पेड़ से बांध कर देवताओं को प्रसन्न करने

के लिए कुर्बान किया जा रहा है। उसने तुरंत उस पेड़ को काट डाला। तभी ऐसा चमत्कार हुआ कि एक सनुबर का पेड़ उग आया जो ईसा मसीह के बचपन का अलंकार था। इसी यादगार के तौर पर क्रिसमस का पेड़ सजाया जाता है। क्रिसमस बच्चों की खुशी, श्रद्धालुओं के श्रद्धा प्रकट और निर्धनों की सहायता का त्योहार है।

नौरोज़

नौरोज़ फारसी में नए दिन अर्थात् नए साल की शुरुआत को कहते हैं। ईरान, मध्य-एशिया, कश्मीर, गुजरात और महाराष्ट्र के उन क्षेत्रों में जहां पारसी धर्म के अनुयायी रहते हैं, यह त्योहार 21 मार्च को मनाया जाता है। असल में पारसी ईरान के रहने वाले थे जो अबसे लगभग बारह सौ साल पहले भारत के पश्चिमी तट के नगरों में आकर बस गए थे। पारसी लोग आग की पूजा करते हैं और उनके संदेशवाहक का नाम "ज़र्तुश्त" है।

कहा जाता है हज़रत ईसा से छः सौ साल पूर्व ईरानी शासक दारयूश के काल में नौरोज़ मनायी जाती थी। "फिरदौसी" ने अपने कविता संग्रह "शाहनामा" में लिखा है कि यह त्योहार बादशाह जमशेद के ज़माने में मनाया जाता था। उसके पास एक ऐसा प्याला था, जिसमें वह सारी दुनिया का हाल देख लेता था। इसलिए उस दिन को जमशेदी नौरोज भी कहते हैं।

इस दिन लोग अपने घरों की सफाई और रंगाई-पुताई कराते हैं, नए कपड़े पहनते हैं। पारसी लोग इस दिन के लिए पहले ही से मांस और मछली खरीद कर रख लेते हैं। फूलों के हार दरवाजों पर सजा दिए जाते हैं। घरों की सीढ़ियों पर रंगीन पाउडर से डिजाइन बनाए जाते हैं और गुलदानों में ताजा और खुशबू वाले फूल सजाए जाते हैं। सुबह के समय सेवैयां और सूजी का हलवा बना कर उनमें गुलाब जल और मेवे छिड़क कर पड़ोसियों और संबंधियों में बांटा

जाता है। नाश्ते के बाद पारसी परिवार समीप के "अग्नि मंदिर" में जा कर धन्यवाद की पूजा में भाग लेते हैं। पूजा की समाप्ति पर लोग एक दूसरे से गले मिलते हैं और हर तरफ नववर्ष की शुभकामनाओं की आवाजें सुनायी पड़ती हैं। नौरोज़ के दिन मूंग की दाल और सादा चावल खाना बहुत अच्छा समझा जाता है। गरीबों को खाना खिलाया जाता है। कश्मीर में नौरोज बादाम की कली खिलने पर मनायी जाती है। मुग़लों के काल में नौरोज़ के दिन बादशाह सोने की तराजू में तुलते थे। उनके वज़न के बराबर सोना चांदी, खुशबू और अनाज तौल कर लोगों में बांटा जाता था। इस रस्म को "तुलादान" कहते थे।